

आन्ध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद से ४५ मील उत्तर-पूर्व में कुल्पाक तीर्थ है जिसका वर्णन विविध तीर्थ कल्प के अन्तर्गत माणिक्य देव कल्प के रूप में प्राप्त होता है। इस तीर्थ का पौराणिक इतिहास अष्टापद से सम्बन्धित है जो इस प्रकार है... पूर्व काल में भरत चक्रवर्ती ने अष्टापद पर्वत पर जिन ऋषभदेव की माणिक्य की एक पृथक् प्रतिमा निर्मित कराई थी जो माणिक्य देव के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिमा है। कुछ लोगों का ऐसा भी मानना था कि भरतेश्वर की मुद्रिका में स्थित पाचिरत्न से यह प्रतिमा बनायी हुई है। इस प्रतिमा की पूजा चिरकाल तक अष्टापद में हुई। उसके बाद इस प्रतिमा को सर्वप्रथम विद्याधरों ने, फिर इन्द्र ने, उसके बाद रावण ने अपने-अपने यहाँ लाकर उसकी पूजा की। लंका दहन के समय यह प्रतिमा समुद्र में डाल दी गयी और बहुत काल बीतने पर कन्नड़ देश के अन्तर्गत कल्याण नगरी के राजा शंकर ने पद्मावती देवी के संयोग से उक्त प्रतिमा प्राप्त की और उसे तेलंग देश के कुलपाक नगर में एक नव निर्मित जिनालय में स्थापित कर दी और उसके व्यय हेतु १२ ग्राम प्रदान किये।

अष्टापद पर्वत ऋषभदेवकालीन अयोध्या से उत्तर की दिशा में अवस्थित था। भगवान् ऋषभदेव जब कभी अयोध्या की तरफ पधारते, तब अष्टापद पर्वत पर ठहरते थे और अयोध्यावासी राजा प्रजा उनकी धर्म सभा में दर्शन-वन्दनार्थ तथा धर्म-श्रवणार्थ जाते थे, परन्तु वर्तमान कालीन अयोध्या के उत्तर दिशा भाग में ऐसा कोई पर्वत आज दृष्टिगोचर नहीं होता जिसे अष्टापद माना जा सके। इसके अनेक कारण ज्ञात होते हैं, पहले तो यह कि भारत के उत्तरदिग्बिभाग में विद्यमान पर्वत श्रेणियाँ उस समय में इतनी ठण्डी और हिमाच्छादित नहीं थीं जितनी आज हैं। दूसरा कारण है कि अष्टापद पर्वत के शिखर पर भगवान् ऋषभदेव, उनके गणधरों तथा अन्य शिष्यों का निर्माण होने के बाद देवताओं ने तीन स्तूप और चक्रवर्ती भरत ने सिंह निषद्या नामक चैत्य बनवाकर उसमें चौबीस तीर्थकरों की वर्ण तथा मनोपैत प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवाके, चैत्य के चारों द्वारों पर लोहमय यान्त्रिक द्वारपाल स्थापित किये थे। इतना ही नहीं, पर्वत को चारों ओर से छिलवाकर सामन्य भूमिगोचर मनुष्यों के लिए, शिखर पर पहुँचना अशक्य बनवा दिया था। उसकी ऊँचाई के आठ भाग क्रमशः आठ मेखलायें बनवाई थीं और इसी कारण से इस पर्वत का अष्टापद नाम प्रचलित हुआ था। भगवान् ऋषभदेव के इस निर्वाण स्थान के दुर्गम बन जाने के बाद, देव, विद्याधर, विद्याचारण लब्धिधारी मुनि और जंघाचारण मुनियों के सिवाय अन्य कोई भी दर्शनार्थ अष्टापद पर नहीं जा सकता था और इसी कारण से भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी धर्मोपदेश-सभा में यह कहा था कि जो मनुष्य अपनी आत्मशक्ति से अष्टापद पर्वत पर पहुँचता है वह इसी भव में संसार से मुक्त होता है।

अष्टापद के अप्राप्य होने का तीसरा कारण यह भी है कि सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने अष्टापद पर्वत स्थित जिनचैत्य, स्तूप आदि को अपने पूर्वज भरत चक्रवर्ती के स्मारकों की रक्षार्थ उसके चारों तरफ गहरी खाई खुदवाकर उसे गंगा के जल प्रवाह से भरवा दिया था। ऐसा प्राचीन जैन कथा साहित्य में किया गया वर्णन आज भी उपलब्ध होता है।

आदिनाथ ऋषभदेव की निर्वाणभूमि होने के कारण तीर्थों में सबसे प्राचीन अष्टापद तीर्थ माना जाता है। जिन मन्दिरों और मूर्तियों, स्तूपों के उद्भवों की यह महत्वपूर्ण पौराणिक पृष्ठभूमि है। जैनेतर साहित्य में इसे कैलाश के नाम से सम्बोधित किया गया है। जैन शास्त्रों में भी अष्टापद का नाम कैलाश बताया गया है।

"Over the high region of the Himalayas was the paradise, of Nirvana and the final resting place of the Jains above the vault of heaven.... Tirthankaras (Saviours) have abdicated and gone north to Kailasa and Mansarovar, where, dropping their mortal frames, they have ascended to their final abode." (Ascent To The Divine The Himalaya Kailasa Mansarovar).

आचार्य हेमचन्द्र प्रणीत अभिधान चिन्तामणि में लिखा है ‘रजताद्रिस्तु कैलासोऽष्टापद स्फटिकाचल’ (अभिधान चिन्तामणि ४/९४ पृ. २५३) अर्थात् कैलाश पर्वत के चार नाम हैं। (१) रजताद्रि, (२) कैलाश, (३) अष्टापद, (४) स्फटिकाचल। इसके अलावा और जो नाम उपलब्ध होते हैं वो इस प्रकार हैं। घन्दावास, हराद्रि, हिमवत्, हंस और इसको ध्वलगिरि भी कहा गया। कैलास और अष्टापद दोनों का एक ही पर्यायिकाची शब्द है जिसका अर्थ है स्वर्ण या सोना। सूर्य की किरणें जब कैलास या अष्टापद पर पड़ती हैं तो वह स्वर्ण की भाँति चमकता है।

प्राकृत में अष्टापद को ‘अद्वावय’ कहा गया है। जिसका अर्थ है स्वर्ण या सोना। कैलाश का अर्थ भी रजतशिला होता है। आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व अष्टापद का वर्णन सोने के पर्याय के रूप में बंगला लेखक भारतचन्द्र ने किया था। देखते-देखते सेतुति होइलो अष्टापद अर्थात् मां अन्नपूर्ण के नौका पर विराजमान होते ही नौका-पतवार आदि स्वर्णमय बन गये। कैलाश को प्राकृत भाषा में ‘कईलास’ भी कहा गया है। जिसका एक अर्थ राहू का कृष्ण पुद्गल विशेष बताया गया है। कालीदास ने अपने मेघदूत में कैलाश का कृष्ण पर्वत के रूप में उल्लेख किया है। स्वामी तपोवन ने भी कैलाश को कृष्ण पर्वत यानी Dark Mountain कहा है।

अष्टापद का अर्थ आठ पाद वाला भी होता है। अष्टापद नाम का जीव आठ पैरों वाला होता है और शेर से भी ज्यादा बलवान होता है। ऐसा अभिधान चिन्तामणि ३१० में उल्लेख मिलता है।

कैलाश तिब्बत प्रदेश में स्थित है। अष्टापद कैलाश के विषय में जानने के लिये तिब्बत के विषय में जानना आवश्यक है। प्राचीन काल से ही तिब्बत और काश्मीर के क्षेत्र को स्वर्ग कहा जाता था और मानव संस्कृति और सभ्यता का उद्गम स्थल भी तिब्बत को माना जाता है। P. N. Oak के अनुसार The term "Tibet" is a malpronunciation of the sanskrit term 'Trivishtap' meaning paradise. The holy peak kailas, the sacred Mansarovar lake and the venetrated sources of the river Ganga, Yamuna, Saraswati, Sindhu are all in Himalayan region. The supporting Arab tradition that Adam first stepped on the earth from the heaven in India points to the fact that Tibet, Kashmir and the Himalayan foot hills may be that region which is named heaven alias paradise and which has all associations.

Higgins के अनुसार— The Peninsula of India would be one of the first peopled countries, and its inhabitants would have all the habits of the progenitors of man before the flood in as much perfection or more than any other nation.

हिमालय पर्वत शृंखला में कैलाश एक असमान्य पर्वत है। समस्त हिम शिखरों से अलग और दिव्य। पूरे कैलाश की आकृति एक विशाल शिवलिंग जैसी है। यह आसपास के सभी पर्वतों से ऊँचा है। यह कसौटी के ठोस काले पत्थर का है जबकि अन्य पर्वत कच्चे लाल मटमैले पत्थर के हैं। यह सदा बर्फ से ढका रहता है। कैलाश शिखर को चारों कोनों के देखने से मन्दिर की आकृति बनी दिखती है। इसकी परिक्रमा ३२ मील की है। जो कैलाश के चारों ओर के पर्वतों के साथ होती है। कैलाश का स्पर्श यात्रा मार्ग से लगभग डेढ़ मील सीधी चढ़ाई पार करके ही किया जा सकता है जो अत्यन्त कठिन है।

मत्स्य पुराण (कैलाश वर्णनम् पृ. ३९४) में कैलाश के विषय में लिखा है—

तस्याश्रमस्योत्तरस्त्रिपुरारिनिषेवितः ।  
 नानरत्नमयैः श्रृंगः कल्पद्रुमसमन्वितैः ॥१॥

मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः ।  
 तस्मिन्नवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः ॥२॥

अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्ललकाधिपः ।  
 कैलासपादसम्भूतं रम्यं शीतजलं शुभम् ॥३॥

मन्दारपुष्परजसा पूरितं देवसन्निभम् ।  
 तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा ॥४॥

दिव्यञ्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् ।  
 प्रागुत्तरेण कैलासादिव्यं सौगन्धिकंगिरिम् ॥५॥

सर्वधातुमय दिव्य सुवेलं पर्वतं प्रति ।  
 चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुभ्रो रत्नसन्निभः ॥६॥

तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम् ।  
 तस्मात् प्रभवते दिव्या नदीं ह्यच्छोदिका शुभा ॥७॥

सूतजी ने कहा—उनके आश्रम से उत्तर दिशा की ओर भगवान् त्रिपुरारि शिव के द्वारा निषेवित तथा कल्पद्रुमों से संयुत एवं अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण शिखरों से समन्वित हिमवान् के मध्य में पृष्ठ पर कैलाश नाम वाला पर्वत है। उसमें कुबेर अपने गुह्यकों को साथ में लेकर निवास किया करते हैं ।१-२। वहाँ पर अलकापुरी का स्वामी कुबेर राजा सर्वदा अप्सराओं से अनुगत होकर प्रसन्नता का अनुभव किया करते हैं। वहाँ कैलाश के पाद से समुत्पन्न परमरम्य एवं शुभ शीतल जल है ।३। जो जल मन्दार नाम वाले देववृक्ष के रज पराग से पूरित रहा करता है और देव के ही सदृश है। उसी जल से एक मन्दाकिनी नाम वाली सरिता जो परम दिव्य है और अत्यन्त शुभ है वहन किया करती है ।४। उस नदी के तीर पर ही वहाँ पर अतीव दिव्य एवं महान् वन है जिसका शुभ नाम नन्दन है। कैलाश गिरि से पूर्वोत्तर में एक अति दिव्य सोगन्धिक गिरि है ।५। यह समस्त धातुओं से परिपूर्ण दिव्य और पर्वत के प्रति सुन्दर वेल वाला है। एक चन्द्रप्रभ नाम वाला भी वहाँ पर पर्वत है जो परम शुभ्र और रत्न के तुल्य है ।६। उसके ही समीप में एक परम दिव्य अच्छोद नाम से प्रसिद्ध सरोवर है। उस तट से एक शुभ अच्छोदिका नाम वाली नदी उत्पन्न होती है ।७।

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम् ।  
 तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः ।८।

यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकै परिवारितः ।  
 पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोका शुभा ।९।

महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महादधिम् ।  
 कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सवौषधिं गिरिम् ।

मनः शिलामयं दिव्यं सुवेलंपर्वतं प्रति ।  
 लोहितो हेमश्रुंगस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ।१०।

तस्यपादे महादिव्यं लोहितं सुमहत्सरः ।  
 तस्मिन् गिरे निवसति यक्षोमणिधरोवशी ॥१२ ।

दिव्यारण्यं विशोकञ्चतस्य तीरे महद्वनम् ।  
 तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षोमणिकरोवशी ॥१३ ।

सौभ्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यैः परिवारियः ।  
 कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधी गिरिः ॥१४ ।

उस अच्छोदिका सरिता के तट पर एक अत्यन्त शुभ-दिव्य और महान् चैत्ररथ नाम वाला वन है। उसमें गिरि पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र निवास किया करते हैं ॥८ । यह यक्षों का अत्यन्त कूर सेनापति है जो सर्वदा गुह्यकों से परिवारित रहा करता है और वहाँ पर परम पुण्यमयी मन्दाकिनी नाम वाली अच्छोदिका शुभ नदी बहा करती है ॥९ । यही मण्डल के मध्य में महोदधि में प्रविष्ट होने पर कैलाश के दक्षिण पूर्व में शिव सर्वोषधि गिरि है ॥१० । मैनसिल से परिपूर्ण पर्वत के प्रति सुबेल और दिव्य-हेम की शिखर वाला-लोहित नाम वाला एक महान् सूर्यप्रभ गिरि है जिसकी प्रभा सूर्य के समान है। उस पर्वत के निचले भाग में महान् दिव्य लोहित नाम वाला ही एक सर है। उसी सर से लौहित्य नाम वाला एक विशाल नद वहन किया करता है ॥११-१२ । उस नद के तीर एक अति महान्-दिव्य विशोका रूप है। उसमें पर्वत पर वशी यक्ष मणिधर निवास किया करता है। वह परम सौभ्य और सुधार्मिक गुह्यकों से चारों ओर में घिरा हुआ रहा करता है। कैलाश पर्वत से पश्चिमोत्तर दिशा में ककुद्मान् नाम वाला औषधियों का गिरि है ॥१३-१४ ।

ककुद्मिति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः ।  
 तदजननन्त्रैः ककुद शैलन्त्रिककुदं प्रति ॥१५ ।

सर्वधातुमयस्तत्रसुमहान् वैद्युतो गिरिः ।  
 तस्य पादे महादिव्यं मानस सिद्धसेवितम् ॥१६ ।

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूलोकपवरी ।  
 तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नामविश्रुत ॥१७ ।

कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।  
 ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥१८ ।

कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वोषधिर्गिरिः ।  
 अरूणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ॥१९ ।

भवस्य दयितः श्रीमान् पार्वतोहेमसन्निभः ।

उस ककुद्मान् में ककुद्मी रुद्र की उत्पत्ति होती है। वह बिना जन वाला त्रिकुद शैल है ॥१५ । वहाँ पर सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्युत नाम वाला गिरि है। उस पर्वत के पाद में एक अत्यन्त दिव्य मानस वाला सरोवर है जो सदा सिद्धों के द्वारा सेवित रहा करता है ॥१६ । उस सरोवर से परम पुण्यमयी लोकों को पावन कर देने वाली सरयू नाम वाली नदी समुत्पन्न हुआ करती है। उसके तट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज्य नाम से प्रसिद्ध दिव्य वन है ॥१७ । वहाँ पर कुबेर का अनुचर वशी प्रोहित का पुत्र ब्रह्मधाता निवास किया करता है वह राक्षस अनन्त विक्रम वाला था ॥१८ । कैलाश पर्वत से पश्चिम दिशा में एक अति दिव्य सर्वोषधि गिरि यह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतों में श्रेष्ठ वर्ण वाला और रुक्म (सुवर्ण) धातु

से विभूषित होता है। १९।

अस्त्युतरेण कैलासाच्छिवः सेवोषधोगिरिः ।  
गोरन्तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ॥२४॥  
हिरण्यश्रृंगः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः ।  
तस्यपादे महद्विव्यं सरः काञ्चनबालुकम् ॥२५॥  
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ।  
गंगार्थे स तु राजर्षस्त्रवाम बहुलाः समा ॥२६॥

उस सर से परम पुण्यमयी और अत्यन्त शुभ शैलोदका नाम वाली नदी समुत्पन्न होकर बहती है। वह उन दोनों के मध्य में चक्षुषी पश्चिम सागर में प्रविष्ट होती है। २३। कैलाश के उत्तर भाग में सवेषिध शिवगिरि है। यह श्रेष्ठ पर्वत गौर हरिताल मय ही होता है। हिरण्य भृंग बहुत ही महान् और दिव्यौषधियों से परिपूर्ण गिरि है। उसके चरणों के भाग में एक महान् दिव्य सर है जिसकी बालुका काञ्चनमयी है। वहाँ पर एक परम रम्य बिन्दुसर नाम वाला सरोवर है जहाँ पर गंगा के लाने के लिये तपश्चर्या करता हुआ राजर्षि राजा भगीरथ बहुत से वर्षों तक रहा था। २४-२६। मत्स्य पुराण के इस वर्णन में ८वें तीर्थकर चन्द्रप्रभ जिनके नाम पर कैलाश के पूर्व में एक पर्वत है। दूसरा यक्ष मणिभद्र का वर्णन जिनकी मान्यता का प्रभाव आज भी जैन मन्दिरों में परिलक्षित होता है। यक्ष मान्यता जैनियों में अनादि काल से प्रचलित है। ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण स्थल पर मणिभद्र यक्ष का वास यक्षों की परम्परा को प्राचीन जैन परम्परा से सीधा जोड़ता है। जैन साहित्य में मणिभद्र यक्ष के प्रभाव सम्बन्धी अनेक वर्णन मिलते हैं। महुडी (गुजरात) में घण्टाकर्ण की मान्यता जैन समाज में बहुत है और यही घण्टाकर्ण बद्रीनाथ पर्वत के क्षेत्रपाल हैं। जिस तरह शिखरजी पर्वत के भूमिया जी, बद्रीनाथ पर्वत के घण्टाकर्ण उसी तरह कैलाश के क्षेत्रपाल मणिभद्र यक्ष हैं।

तिब्बती मान्यता में यह कहा जाता है कि बुद्ध भगवान् ने इस आशंका से कि कहीं यक्षगण इसके शिखर को उखाड़कर ऊपर न ले जाएँ, इसे चारों ओर से अपने पैरों से दबाकर रखा है (कैलाश के चारों ओर बुद्ध भगवान् के चार पद-चिन्ह हैं ऐसा कहा जाता है।) तथा नाग लोग कहीं इसे पाताल में न ले जाएँ, इस डर से इसके चारों ओर सांकलें बनाई गई हैं। कैलाश का अधिष्ठात देवता देमछोक है, जो पावों के नाम से भी पुकारा जाता है। वह व्याध चर्म का परिधान और नर-मुण्डों की माला धारण करता है। उसके एक हाथ में डमरू और दुसरे में त्रिशूल है। इसके चारों ओर ऐसे ही आभूषणों से आभूषित प्रत्येक पंक्ति में पाँच सौ की संख्या से नौ सौ नब्बे पंक्तियों में अन्यान्य देवगण बैठे हुए हैं। देमछोक के पार्श्व में खड़े या एकाजती नामक देवी विराजमान हैं। इस कैलाश शिखर के दक्षिण भाग में वानरराज हनुमानजी आसीन हैं। इसके अतिरिक्त कैलाश और मानसरोवर में शेष अन्य देवगणों का निवास है। यह कथा कडरी-करछर नामक तिब्बती कैलाश-पुराण में विस्तृत रूप से वर्णित है। उपर्युक्त देवताओं के दर्शन किसी-किसी पुण्यात्मा अथवा उच्च कोटि के लामा को ही हो सकते हैं। कैलाश के शिखर पर मृदंग, घंटा, ताल, शंख आदि और अन्य कतिपय वाद्यों का स्वर सुनायी पड़ता है।

वाल्मीकिं ४३ में सुग्रीव ने शतबल वानर की सेना को उत्तरदिशा की ओर भेजते हुए उस दिशा के स्थानों में कैलाश का भी उल्लेख किया है— ततु शीघ्रमतिक्रम्ब कान्तारे रोमहर्षणम्-कैलामं पांडुरं प्राप्य हृष्टा युयं भविष्यथ अर्थात् उस भयानक बन को पार करने के पश्चात् श्रेत (हिममंडित) कैलाश पर्वत को देखकर तुम प्रसन्न हो जाओगे।

"Kangri Karchhak...the Tibetan Kailas Purana....says, that Kailas is in the centre of the whole universe towering right up into the sky like the handle of a mill-stone, that half-way on its side is Kalpa Vriksha (wish-fulfilling tree), that it has square sides of gold and jewels, that the eastern face is crystal, the southern sapphire, the western ruby, and the northern gold, that the peak is clothed in fragrant flowers and herbs, that there are four footprints of

गच्छामः शरणं देवं शूलपाणि त्रिलोचनम्:  
प्रसादाद् देव देवस्य भविष्यथ यथा पुरा ॥२॥  
इत्युक्ता ब्राह्मणा सद्धि कैलासं गिरिमुत्तमम्  
दहशुस्ते सपासीन मुमया सहितं हरम् ॥३॥

ब्रह्माजी ने कहा तीन नेत्र वाले शूलपाणि देव की शरणगति में चलें। देवों के भी देव के प्रसाद से जैसा पहले था सब हो जायेगा। ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सब ब्रह्माजी के साथ में उत्तम कैलाश गिरि पर गये और वहाँ पर उमा के साथ बैठे हुए भगवान् हर का इन्होंने दर्शन किया।

वामन पुराण भाग दो (५४ अ०) में लिखा है.....

ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्तिकलक्षणम्  
योजनानि चतुः षष्ठि प्रमाणेन हिरण्यमयम् ॥२॥  
दन्ततोरण निर्वृहं मुक्ताजालान्तरं शुभम्  
शुद्ध स्फटिक सोपानं वैदूर्य कृतस्पकम् ॥३॥

इसके पश्चात् विश्वकर्मा ने भगवान् शिव के लिये स्वस्तिक लक्षण वाला गृह निर्मित किया था। जो हिरण्यमय था और प्रमाण में चौंसठ योजन के विस्तार वाला था ॥२॥ उस गृह में दन्त तोरण थे और मुक्ताओं के जालों से अन्दर शोभित हो रहा था जिसमें शुद्ध स्फटिक मणि के सोपान (सीढ़ियाँ) थीं जिनमें वैदूर्य मणि की रचना थी ॥३॥

वामन पुराण के इन उल्लेखों में कैलाश में स्फटिक मणि की सीढ़ियों का वर्णन मिलता है जो अष्टापद में आठ सोपानों से साम्य रखता है। इसके अतिरिक्त शूलपाणि का वर्णन है। भगवान् महावीर के समय भी शूलपाणि यक्षायतन का वर्णन जैन साहित्य में मिलता है।

कर्नल टॉड ने अपनी किताब Annals of Rajasthan में लिखा है.... "इस आदि पर्वत को महादेव आदीश्वर वा बागेश का निवास स्थान बताते हैं और जैन आदिनाथ का अर्थात् प्रथम जिनेश्वर का वासस्थान मानते हैं। उनके कथानुसार उन्होंने यहाँ पर मनुष्य जाति को कृषि और सभ्यता की प्रथम शिक्षा दी थी। यूनानी लोग इसे बैकस का निवास स्थान होना प्रगट करते हैं और इसी से यह यूनानी कथा चली आ रही है कि यह देवता जुपिटर की जंघा से उत्पन्न हुआ।"

यूनानी और रोमन लोग भी कैलाश से परिचित थे। Pococke ने अपनी किताब 'India In Greece' (पेज ६८) में लिखा है Koilon is the heaven of Greeks and coelum that of the Romans. Both these derive from Vedic term Kailas—

वास्तु शिल्प के प्रमुख प्रणेता विश्वकर्मा माने जाते हैं। जिनके नाम से प्राप्त अपराजित शिल्पशास्त्र में महादेव और पार्वती सम्बाद रूप में ३५ श्लोक प्राप्त होते हैं जिसमें सुमेरु शिखर पर क्रष्णभद्रेव की भव्य प्रतिमा को देखकर पार्वती महादेव से प्रश्न करती है और महादेवी जी द्वारा प्रभु का जो वर्णन किया गया वह इस प्रकार है—

सुमेरु शिखरं दृष्टवा, गौरी पृच्छति शंकरम्।  
कोऽयं पर्वत इत्येष कस्येदं मन्दिरं प्रभो ! ॥१॥

सुमेरु शिखर को देखकर गौरी शंकर को पूछती है कि प्रभो ! यह कौन-सा पर्वत है और किसका मन्दिर हैं ?

कोऽयं मध्ये पुन देवः? पादान्ता का च नायिका?।  
किमिदं चक्र मित्यत्र?, तदन्ते को मृगो मृगी? ॥२॥

उस मन्दिर के मध्य भाग में ये कौन-से देव विराजमान हैं ? और उनके पाँगों के नीचे देवी कौन है ? इस परिकर में जो चक्र है ये क्या है ? और उनके नीचे ये मृग और मृगी भी कौन हैं ?

के वा सिंह गजाः के वा? के चामी पुरुषा नव?।  
यक्षो वा यक्षिणी केयं? के वा चामरधारकः? ॥३॥

ये सिंह, हाथी, नौ पुरुष, यक्ष और यक्षिणी तथा चामरधारी ये सब कौन हैं ?

के वा मालाधरा एते? गजारुद्धाश्च के नराः?।  
एतावपि महादेव !, कौ वीणा वंश वादकौ? ॥४॥

हे महादेव ! ये माला धारण करने वाले, गजारुद्ध मनुष्य और वीणा, वंशी को बजाने वाले ये कौन हैं ?

दुन्दुभेर्वादकः को वा?, को वाऽयं शंखवादकः?।  
छत्र त्रय मिदं किं वा?, किं वा भामण्डलं प्रभो ! ॥५॥

हे प्रभो ! ये दुन्दुभि बजाने वाले, शंख बजाने वाले कौन हैं ? ये तीन छत्र और भामण्डल क्या हैं ?

शृणु देवि महागौरी! यत्त्वया पुष्ट मुत्तमम्।  
कोऽयं पर्वत इत्येष कस्येदं मन्दिरं? प्रभो ! ॥६॥

हे पार्वती देवी ! तुमने जो पूछा कि यह पर्वत कौन सा है ? किसका मन्दिर है, यह प्रश्न उत्तम है।

पर्वतो मेरू रित्येष स्वर्णरत्न विभूषितः।  
सर्वज्ञ मन्दिरं चैतद्, रत्न तोरण मण्डितम् ॥७॥

स्वर्ण और रत्नों से युक्त यह मेरू पर्वत है और रत्नमय तोरण से सुशोभित यह सर्वज्ञ भगवान् का मन्दिर है।

अयं मध्ये पुनः साक्षाद्, सर्वज्ञो जगदीश्वरः।  
त्रयस्त्रिंशति कोटि संख्या, यं सेवन्ते सुरा अपि ॥८॥

फिर इसके मध्य में हैं वे साक्षात् सर्वज्ञ प्रभु हैं जो तीन जगत् के ईश्वर हैं और उनकी तेतीस करोड़ देवता सेवा करते हैं।

इन्द्रियैन् जितो नित्यं, केवलज्ञान निर्मलः  
पारंगतो भवाम्भोधे, यो लोकान्ते वसत्यलम् ॥१॥

जो प्रभु, इन्द्रियों के विषयों से कभी जीते नहीं गए, जो केवलज्ञान से निर्मल हैं एवं जो भवसागर से पार हो गए और लोक के अन्तिम भाग-मोक्ष में निवास करते हैं।

अनन्त रूपो यस्तत्र कषायैः परिवर्जितः  
यस्य चित्ते कृतस्थाना दोषा अष्टदशापि न ॥१०॥

वे मोक्ष स्थित प्रभु अनन्त रूप-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य अनन्त चतुष्टय-के धारण करने वाले हैं, कषायों से रहित हैं और जिनके चित्र में अठारह दोषों ने स्थान नहीं किया है।

लिंगरूपेण यस्तत्र, पुरुषेणात्र वत्तति ।  
राग द्वेष व्यतिक्रान्तः, स एष परमेश्वरः ॥११॥

वे वहाँ मोक्ष में लिंगरूप-ज्योति रूप में हैं और यहाँ पुरुष-प्रतिमा रूप में वत्तति हैं, राग-द्वेष से रहित ऐसे ये परमेश्वर हैं।

आदि शक्तिजिनिन्द्रस्य, आसने गर्भ संस्थिता ।  
सहजा कुलजा ध्याने, पद्महस्ता वरप्रदा ॥१२॥

ध्यान स्थित प्रभु के परिकर के आसन के मध्य भाग में स्थित कर कमलों से वर देने वाली मुद्रा में आदिशक्ति श्रुतदेवी-सरस्वती जिनेन्द्र के साथ ही उनके कुल में जन्मी हुई हैं।

धर्म चक्र भिंद देविमिंद ! धर्म मार्ग प्रवर्त्तकम् ।  
सत्त्वं नाम मृगस्सोयं मृगी च करुणा मता ॥१३॥

हे देवी ! यह धर्मचक्र, धर्ममार्ग का प्रवर्त्तकम् है यह सत्त्व नामक मृग और करुणा नामक मृगी है।

अष्टौ च दिग्गजा एते, गजसिंह स्वरूपतः ।  
आदित्याद्या ग्रहा एते, नवैव पुरुषाः स्मृताः ॥१४॥

ये हाथी और सिंह के स्वरूप वाले आठ दिशा रूपी दिग्ज-हाथी हैं और ये नौ पुरुष सूर्य आदि नव ग्रह हैं।

यक्षोऽयं गोमुखो नाम, आदिनाथस्य सेवकः ॥  
यक्षिणी सचिराकारा, नाम्ना चक्रेश्वरी मता ॥१५॥

यह आदिनाथ-ऋषभदेव भगवान् का सेवक गोमुख नामक यक्ष और यह सुन्दर आकृति वाली यक्षिणी चक्रेश्वरी नामक देवी लोक में प्रसिद्ध है।

इन्द्रो पेन्द्राः स्वयं भर्तु जाता श्चामर धारकाः ।  
पारिजातो वसन्तश्च, मालाधरतया स्थितौ ॥१६॥

इन्द्र और उपेन्द्र स्वयमेव प्रभु को चामर ढुलाने वाले हैं। पारिजात वृक्ष और वसन्त ऋतु मालाधारण रूप में स्थित हैं।

स्नात्रं कर्तुं समायाताः सर्वं संताप नाशनम् ।  
कर्पूर-कुड़ कुमा दीनां, धार्यन्तो जलं बहु ॥१८॥

कर्पूर-केशर आदि के पानी को धारण करने वाले बहुत से देव सर्व सन्ताप नाशक स्नात्र-महोत्सव करने के लिए आये हैं।

यथा लक्ष्मी समाक्रान्तं याचमाना निजं पदम् ।  
तथा मुक्तिपदं कान्त मनन्त सुख कारणम् ॥१९॥

जैसे लोग लक्ष्मी से परिपूर्ण अपने पद याचना करते हैं उसी प्रकार उपरोक्त देव भी सुन्दर अनन्त सुख के कारणभूत मोक्ष पद की याचना करते हैं।

हू हू तुम्बरु नामानौ, तौ वीणा वंश वादकौ ।  
अनन्त गुण संघातं, गायन्तौ जगतां प्रभोः ॥२०॥

तीन लोक के प्रभु के अनन्त गुण समूह को गाने वाले ये हू हू और तुम्बरु नामक वीणा और बंशी बजाने वाले देव हैं।

वाद्यमेकोन पञ्चाशद् भेदभिन्न मनेकथा ।  
चतुर्विधा अमी देवा वादयन्ति स्व भक्तितः ॥२१॥  
ये चारों प्रकार के देव अपनी भक्ति से अनेक प्रकार के भेद से ४९ प्रकार के वाजिरों को बजाते हैं।  
सोऽयं देवी महादेवी! दैत्यारिः शंखवादकः ।  
नाना रूपाणि बिभ्राण एक कोऽपि सुरेश्वरः ॥२२॥

हे महादेवी ! ये शंख बजाने वाले, दैत्यों के शत्रु हैं और एक होने पर भी अनेक रूपों को धारण करने वाले देवताओं के ईश्वरअधिपति इन्द्र हैं।

जगत्त्रयाधिपत्यस्य, हेतु छत्र त्रयं प्रभोः ।  
अमी च द्वादशादित्या जाता भामण्डलं प्रभोः ॥२३॥

ये तीन लोक का स्वामित्व बताने वाले प्रभु के हेतु भूत तीन छत्र हैं और ये बारह सूर्य प्रभु के भामंडल रूप हो गए हैं।

पृष्ठ लग्ना अमी देवा याचन्ते मोक्षमुत्तमम् ।  
एवं सर्वं गुणोपेतः सर्वं सिद्धिं प्रदायकः ॥२४॥

ये पीछे रहे हुए देव उत्तम प्रकार के मोक्ष पद को माँगते हैं। इस प्रकार ये प्रभु सर्व गुणों से युक्त और सर्व प्रकार की सिद्धि को देने वाले हैं।

एष एव महादेव! सर्वं देव नमस्कृतः ।  
गोप्याद् गोप्यतरः श्रेष्ठो व्यक्ताव्यक्ततया स्थितः ॥२५॥

हे महादेवी ! यही प्रभु समस्त देवों द्वारा नमस्कृत हैं, रक्षणीय वस्तुओं में सबसे अधिक रक्षणीय होने से श्रेष्ठ हैं और प्रगट व अप्रगट स्वरूप में स्थित हैं।

आदित्याद्या भूमन्त्येते, यं नमस्कर्तुं मुद्यताः ।  
कालो दिवस-रात्रिभ्यां यस्य सेवा विधायकः ॥२६॥  
वर्षा कालोष्ण कालादि शीत कालादि वेष भृत ।  
यत्पूजाऽर्थं कृता धात्रा, आकरा मलयादयः ॥२७॥

जिन प्रभु को नमस्कार करने में उद्यमशील सूर्यादि भ्रमणकर रहे हैं। वर्षा-उष्ण और शीतकालरूपी वेष धारणकर यह काल-समय दिन और रात्रि द्वारा जिनकी सेवा करने वाला है। और जिनकी सेवा-पूजा के लिये ही विधाता ब्रह्मा ने खाने और मलयाचलादि बनाये हैं।

काश्मीरे कुङ्कुमं, देवि ! यत्पूजाऽर्थं विनिर्मितम् ।  
रोहणे सर्वं रत्नानि, यद्भूषणं कृते व्यधात् ॥२८॥

हे देवी ! ब्रह्माजी ने फिर इनकी पूजा के लिए काश्मीर में कुङ्कुम-केसर बनाई है और रोहणगिरि पर सभी प्रकार के रत्न जिनके आभूषण अलंकार के लिए बनाये हैं।

रत्नाकरोऽपि रत्नानि, यत्पूजाऽर्थं च धारयेत् ।  
तारकाः कुसुमायन्ते, भ्रमन्तो यस्य सर्वतः ॥२९॥

समुद्र भी जिनकी पूजा के लिये रत्न धारण करता है और जिनके आस-पास भ्रमण करने वाले तारे भी पुष्प की भाँति परिलक्षित होते हैं।

एवं सामर्थ्यं मस्यैव, ना परस्य प्रकीर्तितम् ।  
अनेन सर्वं कार्याणि, सिध्यन्तो त्यवधारय ॥३०॥

इस प्रकार प्रभु के सामर्थ्य-बल का जैसा लोक में कीर्तन हुआ है, दूसरे किसी का नहीं। अतः इन्हीं प्रभु के द्वारा सारे कार्य सिद्ध होते हैं, ऐसा ही देवी ! तुम जान लो !

परात्परं मिदं रूपं ध्येयाद् ध्येयमिदं परम्  
अस्य प्रेरकता दृष्टा चराचरं जगत्त्रये ॥३१॥

श्रेष्ठ पुरुषों से भी जिनका रूप श्रेष्ठ-उत्तम है और वह रूप ध्यान करने योग्य श्रेष्ठपुरुषों से भी श्रेष्ठ तथा ध्यान करने योग्य है। इस चराचर तीन जगत् में इन्हीं प्रभु की प्रेरणा दिखाई देती है।

दिग्पालेष्वपि सर्वेषु, ग्रहेषु निखिलेष्वपि ।  
ख्यातः सर्वेषु देवेषु, इन्द्रोपेन्द्रेषु सर्वदा ॥३२॥

सभी दिग्पालों में, सभी ग्रहों में, सभी देवों और इन्द्र उपेन्द्रों में भी ये प्रभु सर्वदा प्रसिद्ध हैं।

इति श्रुत्वा शिवाद् गौरी, पूजयामास सादरम् ।  
स्मरन्ती लिंगरूपणे, लोकान्ते वासिनं जिनम् ॥३३॥

गौरी-पार्वती ने महादेव-शिव से यह वर्णन सुनकर लोकान्त मोक्षस्थित इन जिनेश्वर प्रभु की ज्योति रूप से स्मरण करते हुए आदर पूर्वक पूजा की।

ब्रह्मा विष्णु स्तथा शक्रो लोकपालस्स देवताः ।  
जिनार्चनं रता एते, मानुषेषु च का कथा? ॥३४॥

ब्रह्मा, विष्णु, शुक्र और देवों सह सारे लोकपाल भी इन जिनेश्वर भगवान् की पूजा में तल्लीन हैं तो फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या?

जानु द्वयं शिरश्चैव, यस्य घटं नमस्यतः ।  
जिनस्य पुरतो देवि! स यादि परमं पदम् ॥३५॥

हे देवी ! जिनेश्वर प्रभु को नमस्कार करते हुए जिसके दोनों जानु गोडे और मस्तक घिस गये हैं वही परम पद-मोक्ष प्राप्त करता है।

वास्तुशिल्प शास्त्र के शिव पार्वती उवाच में ऋषभदेव का महात्म्य ऋषभदेव की प्रमाणिकता की पुष्टि करता है।

सभी धर्मों का प्रेरणा स्रोत कैलाश है। यहाँ की तीर्थयात्रा प्रतिवर्ष हजारों यात्री करते हैं। यह क्षेत्र प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का निर्वाण स्थल है साथ ही यह क्षेत्र पुराणों आदि ग्रन्थों में शिव के नाम से भी जुड़ा है। तिब्बती भाषा में शिव का अर्थ मुक्त होता है। इसी लिये भगवान् ऋषभदेव को भी कहीं-कहीं शिव के नाम से भी अभिहित किया गया है.....

कैलाश पर्वते रम्ये वृषभो यं जिनेश्वर  
चकार स्वारतारं यः सर्वज्ञ सर्वगः शिवः

—स्कन्ध पुराण कौमार खण्ड अ० ३७

केवलज्ञान द्वारा सर्वव्यापी, सर्वज्ञाता परम कल्याण रूप शिव वृषभ ऋषभदेव जिनेश्वर मनोहर कैलाश-अष्टापद पर पधारे ।

तिब्बती भाषा में लिंग का अर्थ क्षेत्र होता है- "It may be mention that Linga is a Tibetan word of Land" (S.K. Roy - History Indian & Ancient Egypt. pg. 28). तिब्बती लोग इस पर्वत को पवित्र मानकर अति श्रद्धा के साथ पूजा करते हैं तथा इसे बुद्ध का निर्वाणक्षेत्र कागरिक पौच कहते हैं। यहाँ बुद्ध का अर्थ अर्हत से है जो बुद्ध अर्थात् ज्ञानी थे। शिवलिंग का अर्थ मुक्त क्षेत्र अर्थात् मोक्ष क्षेत्र होता है। शिव भक्त भी लिंग पूजा करते थे। जो प्राचीन काल में भी प्रचलित था- "In fact Shiva and the worship of Linga and other features of popular Hinduism were well established in India long before the Aryans came" (K.M. Pannekar "A survey of Indian History' Pg-4), बाद में तान्त्रिकों ने इसका अर्थ अर्हत धर्म के विपरीत बनाकर विकृत कर दिया ।

कैलाश का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। शिव और ब्रह्मा ने यहाँ तपस्या की थी, मरिचि और वशिष्ठ आदि ऋषियों ने भी यहाँ तप किया था। चक्रवर्ती सगर के पूर्वज मन्धाता के यहाँ आने का वर्णन मिलता है। गुरुला मन्धाता पर्वत पर उन्होंने तपस्या की थी। ऐसा कहा जाता है कि गुरुला मन्धाता पर्वत की शृंखला को उपर से देखें तो एक बड़े आकार के स्वस्तिक के रूप में दिखाई देता है। "The Bonpo the ancient pre Buddhist Tibetan religion refers to it as a "Nine Storey" Swastik Mountain" बीसवें तीर्थकर मुनिसुव्रत स्वामी इस क्षेत्र में आये थे ऐसा तिब्बती ग्रन्थों में वर्णन है। राक्षस ताल के जिस द्वीप पर उन्होंने तपस्या की थी उसका स्वरूप कूर्म की तरह था। स्वामी तपोवन के अनुसार राम और लक्ष्मण भी यहाँ आये थे- On the road from Badrinath to Kailas one can see the foot prints of the two horses on which Rama and Laxman were riding when they went to Kailas. जैन और जैनेतर दोनों ग्रन्थों में रावण का अष्टापद जाने का विवरण मिलता है। जैन शास्त्र में वर्णित इस घटना के विवरण का कागड़ा जिले के नमदिश्वर मन्दिर की एक दीवार पर बने चित्र से भी पुष्टि होती है। इस विषय में मीरा सेठ ने अपनी किताब "Wall paintings of the Western Himalayas" में लिखा है "In one of the panel Rawana in his annoyance being ignore by Shiva is trying to shake Kailas." यहाँ बालि की जगह शिव को बताया गया है। स्वामी मुनि ने यहाँ तपस्या की थी। महाभारत में भी कैलाश मानसरोवर से सम्बन्धित अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनमें व्यासमुनि भीम, अर्जुन और कृष्ण के कई बार मानसरोवर जाने का उल्लेख है। जोशीमठ और बद्रीनाथ के

बीच पाण्डुकेश्वर से प्राप्त एक ताम्रलेख में वर्णन है कि एक कत्तचुरी राजा ललितसुर देव और देशतदेव ने इस क्षेत्र को अधिकृत किया था। क्षेत्रसंग और इत्सिन आदि यात्रियों ने भारत में इसी क्षेत्र से प्रवेश किया था। जगत गुरु शंकराचार्य के जीवन चरित्र में कैलाश के निकट अपना शरीर छोड़कर योग द्वारा कुछ समय के लिये परकाया में प्रवेश का वर्णन है। कांगरी करछक में वर्णन है कि Geva Gozangba द्वारा कैलाश परिक्रमा पथ की खोज सबसे पहले की गई। ऐसा कहा जाता है कि भारत से सप्तऋषि यहाँ आये थे। आचार्य शांतरक्षित और गुरु पद्मसम्भव ने भी यहाँ की यात्रा की थी। लेकिन इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। Lochava (Tibetan translator) और Rinchhenzanbo 1958-1058 में यहाँ आये थे और बारह वर्ष खोचर में रहे थे। उनकी गढ़ी आज भी वहाँ पर है। १०२७ ई. में पण्डित सोमनाथ जिन्होंने “कालचक्र ज्योतिष” का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया था उनके साथ पं. लक्ष्मीकर और धनश्री यहाँ आये थे। ११वीं शताब्दी में महान् तांत्रिक सिद्ध मिलरेपा ने यहाँ नग्न रह कई वर्ष तपस्या की थी। कैलाश पुराण में उनके चमत्कारों का वर्णन मिलता है। मिलरेपा के गुरु लामाकारपा और उनके गुरु तिलोपा ने कैलाश यात्रा की थी। सन् १०४२ में विक्रमशिला विद्यालय के आचार्य दीपांकर ने यहाँ पर बौद्ध धर्म का प्रचार किया और कई किताबें भी लिखीं। कैलाश मानसरोवर की सदियों से प्रचलित तीर्थयात्रा १९५९ से १९८० तक बन्द रहने के बाद १९८१ में पुनः प्रारम्भ हुई। उससे पूर्व तथा बाद में अनेक महत्वपूर्ण लोग इस क्षेत्र में गये और उन्होंने अपनी यात्रा का विवरण अपने लेखों में दिया। यूरोपीय विद्वानों ने भी यहाँ की यात्रा की और महत्वपूर्ण खोजें भी कीं परन्तु कैलाश की पवित्रता का पूर्णतः सम्मान करते हुए।

सन् १८१२ ई० में William Moor Craft इस क्षेत्र में आये थे और मानसरोवर पर अपना शोध किया था..... "The first Europeans to explore the holy lakes were William Moorcroft, whose name will ever be remembered in connection with the tragic fate of the Mission to Bokhara in 1825, and Hyder Hearsey, whose wife was a daughter of the Mogul Emperor Akbar-II."

"In 1812 Moorcroft and Hearsey, disguised as ascetics making a pilgrimage, entered Tibet by the Niti Pass in Garhwal, visited Gartok, which had then, as now, only a few houses, traders living in tents during the fair season, explored Rakashas and Mansarovar Lakes and saw the source of the Sutlaj river."

"It was in 1824 that the first Russian caravan visited bokhara. On their return to the Almora district the two explorers were arrested by the Nepalese soldiers, but subsequently after some trouble were released (vide "Journal Royal Geog.Soc.," xxxvi.2)." (Western Tibet).

सन् १८९८ ई. में लिखित In The Forbidden Land (Vol-1) में A. Henry Savage Landor ने १६६०० ft. पर Lama Chokden Pass से कैलाश के सौन्दर्य का वर्णन किया है - "I happened to witness a very beautiful sight. To the north the clouds had dispersed, and the snow-capped sacred Kelas Mount stood majestic before us. In appearance no unlike the graceful roof of a temple, Kelas towers over the long white-capped range, contrasting in beautiful blending of tints with the warm sienna colour of the lower elevations. Kelas is some two thousand feet higher than the other peaks of the Gangir chain, with strongly defined ledges and terraces marking its stratifications, and covered with horizontal layers of snow standing out in brilliant colour against the dark ice worn rock. (In the forbidden land pg. 184)

कैलाश परिक्रमा पथ पर १८०० फीट उपर Dolma-La, a pass के विषय में The Throne Of The God Ea Arnorld Heim and August Gansser ने लिखा है— "Now we are on pilgrimage to Dolma-La, a pass over 18,000 feet high, the highest in the circuit of Kailas. A forest of cairns indicates the holiness of the place. Great piles of human hair are encircled by little walls. A rock is covered with teeth that have been extracted— religious sacrifices made by fanatical pilgrims. Huge and savage granite crags border the pass, which is covered with new-fallen snow. My companions kneel at the tomb of a saint. Hard by is a rock showing what are said to be the holy man's footprints." ""Beside Dolma-La is an enormous crag surmounted by a flag staff....." (pg.102).

आगे कैलाश के विषय में उन्होंने लिखा है— "All that is beautiful is sacred" the fundamental idea of Asiatic religions is embodied in one of the most magnificent temples I have ever seen, a sunlight temple of rock and ice. Its remarkable structure, and the peculiar harmony of its shape, justify my speaking of Kailas as the most sacred mountain in the world. Here is a meeting-place of the greatest religions of the East, and the difficult journey round the temple of the gods purifies the soul from earthly sins. The remarkable position of this mountain that towers out of the Transhimalayan plateau already indicates that it must present extremely interesting geological problems for solution. "This mountain is just as sacred to me as it is to you, for I too am a pilgrim, just as those two lamas who passed a moment ago are pilgrims. Like you, like them, I am in search of the beautiful, the sacred in this wonderful mountain!..." "The very stones of this region are sacred, and to collect specimens is sacrilege." (pg.97-98).

"It is believed that one parikrama of the Kailas peak washes off the sin of one life, circuits wash off the sin of one kalpa, and 108 parikramas secure Nirvana in this very life." अर्थात् यह माना जाता है कि कैलाश की एक परिक्रमा एक जीवन के सारे पापों का क्षय कर देती है। १० परिक्रमा एक कल्प के पापों का क्षय कर देती है। और १०८ परिक्रमा करने से इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त होता है।

इस क्षेत्र में हर बारह वर्ष में एक मेला लगता है..... There is a big flag-staff called tarbochhe at Sershung on the western side of Kailas. A big fair is held there on Vaisakha Sukla Chaturdasi and Purnima (full - moon day in the month of May), when the old flag-staff is dug out and re-hoisted with new flags." "Every horse year, and accordingly every tweleth year, crowds of pilgrims come to Kailas." (Exploration In Tibet)

चतुर्विंश संघ की स्थापना करके ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थकर बने। समवसरण में उनकी देशना होने के उपरान्त अखण्ड तूष रहित उज्ज्वल शाल से बनाया हुआ चार प्रस्थ जितना बलि (अर्थात्- बिना टूटे साफ सफेद चावल) थाली में रख करके समवसरण के पूर्व द्वार से अन्दर लाया गया और प्रभु की प्रदक्षिणा कर उछाल दिया गया। उसके आधे भाग को देवताओं ने ग्रहण कर लिया जो पृथ्वी पर गिरा उसका आधा भरत ने और आधा भाग परिवार जनों ने बांट लिया। उन बलि चावलों का ऐसा प्रभाव माना जाता है कि उसके प्रयोग से पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और छः महीने तक नये रोग नहीं होते। आज भी कैलाश की परिक्रमा करते तीर्थयात्री वहाँ चावल अर्पण करते हैं जिसका उल्लेख 'Throne Of The God' में लेखक ने किया है..... "There are endless chains of red, brown, and yellow mountains, incredibly clear. On the far horizon we discern a new mountain range, pastel blue in the distance, with yellow

glaciers. This is Transhimalaya. Out of the vast extent of these new peaks there thrusts up a white cone, a mountain of strange shape, Kailas, the holy of holies of the Asiatic religion. My companions are motionless, the snow reaching to their hips, while they say their prayers. Each of us offers up to Kailas a handful of rice, scattered down the wind which blows towards the mountain." (The Throne Of The Gods)

बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्राचीन सराक जाति के लोगों में भी बीस तीर्थकरों की निर्वाण भूमि पारसनाथ (शिखर जी) की दिशा में धान (चावल) अर्पण करने की परम्परा आज भी देखने को मिलते हैं। जो अष्टापद पर चावल चढ़ाने, उछालने की प्राचीन परम्परा का प्रतीक है। सराकों के गोव्र पिता आदिनाथ या ऋषभनाथ हैं। मन्दिरों में चावल चढ़ाने की प्रथा भी इसी प्राचीन परम्परा से चली आ रही है। चावल की सिद्ध शिला जिसका आकार अर्द्ध चन्द्राकार बनाकर उसपर मुक्त जीव का बिन्दु आकार बनाया जाता है। सिद्ध शिला के प्रतीक चन्द्र बिन्दु के नीचे सम्यक दर्शन, ज्ञान और चारित्र का प्रतीक तीन बिन्दु बनाये जाते हैं। उसके पश्चात् स्वस्तिक।

Sven Hedin ने कैलाश के विषय में कहा है— The holy ice mountain or the ice jewel is one of my most memorable recollections of Tebet, and I quite understand how the Tebetan can regard as a divine sanctuary this wonderful mountain which so striking a resemblance to a chhorten, the movement which is erected in memory of a deceased saint within or without the temples. (pg.96) ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण स्थल पर स्तूप निर्माण की जैन शास्त्रों में दिये गये उल्लेखों की पुष्टि Sven Hedin के इस वर्णन से होती है जो उन्होंने कैलाश परिक्रमा करते समय डिरिपू गुफा से आगे चलने पर किया है— "On our left, northwards the mountain consist of vertical fissured granite in wild pyramidal form. Kailash is protected on the north by immense masses of granite" (Pg.195) कैलाश तथा उसके आस-पास प्रचुरता से मारबल पत्थर की बनी प्राचीरें आदि वहाँ प्राचीन काल में वैत्यों और स्तूप निर्मित होने की पुष्टि करते हैं। श्री भरत हंसराज शाह ने सन् १९५३-१९९६ और सन् १९९८ में कैलाश की तीन बार यात्रा की। यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक चित्र लिये जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वहाँ कभी मानव निर्मित भवन थे। चित्रों में एक sphinx भी दिखाई देता है जो शायद मिस्त्र में बने पिरामिडों का आदि स्रोत रहा होगा। श्री भरत हंसराज शाहा ने लिखा है—

"During my last two yatras, going away from stipulated and regulated route, I have tried to find any possibility. The particular place, I have visited and photographs-slides I have taken, shows excellent results inviting more study in that direction. There is a cathedral like chiselled mountain in front of South face of Mount Kailas. An image of sitting lion can be seen on its top. ("Sinhnishadhy" prasad). Vertical sculptures are visible on its middle part. A "Sitar" like musical instrument is also visible with one of the sculptures. The tops of few mountains near this mountain are very identical. Their tops are rectangular in shape in front. The mountains themselves are also identical and are of the shape of Gopurams. There is a Gokh (Zarookha) clearly visible in one of the mountain facing Nyari Gompa across the river. In the same range there is a sphinx like huge image in a mountain. Few cubicle shaped huge stones are lying in the ares. Gear teeth shape marble stones are also seen in a pillar like shape in one of the mountains. Bevelled

marble stone borders is also visible on one of the hills. Chabutara shaped ruin is also seen at a place. All this shows that in past, a large scale human work is done at this place. Only in Jain Indology it is mentioned that huge temples, chaityas, stupas were erected in Ashtapad vicinity... (Ashtapad: A Possibility)

बेबीलोन के प्राचीन मन्दिरों जिनको जिगुरात कहते थे उनकी निर्माण शैली भी अष्टापद कैलाश के आधार पर ही बनी है। "The first temple or historical monument, the Ziggurat, found in region between the river Euphrates and Tigris, carried the same message of ascent. It was built by human hands, probably in the form of a stepped receding pyramid, with a chamber on the top reached by a flight of steps. ""This architectonic model has been used much later in the Aztec temple of the Sun in South East Asia. The archetype of all these symbolic monuments is the peak of Ashtapad it self a receding pyramid". (Ascent To The Divine. The Himalaya and Monasarover In Scripture Art And Thought.) अष्टापद और जिगुरात की तुलना करते हुए U.P. Shah ने "Studies in Jaina Art" में लिखा है- "The Jain tradition speak of the first Stupa and Shrine, erected by Bharat, on the mountain on which Rushabhnnath obtained the Nirvana. The shrine and the stupas erected, Bharat made eight terraces (asta-Pada) between the foot and the top of mountain hence the astapada given to the first Jaina Shrine being an eight-terraced mountain, an eight terraced Ziggurat, or an eight terraced stupa."

The Ziggurat was also the mount of the Dead. Henry Frank Fort, ने अपने ग्रन्थ The Birth Of Civilisation में लिखा है.... In The Near East. In Mesopotania, the mountain is the place where....The myth express this by saying the God dies or that he is kept captive in the mountain. बर्मा में भी इसी तरह की stepped monasteries देखने को मिलती है। जिसके विषय में' A History Of Indian And Eastern Architecture' में James fergusson ने लिखा है- "It may be asked, How it is possible that a Balyonian form should reach Burma with-out leaving traces of its passage through India? It is hardly a sufficient answer to say it must have come via Tibet and central Asia," (pg.365)

John snelling ने अपनी किताब "The Sacred Mountain" में कैलाश पर्वत की तुलना एक विशाल मन्दिर से की है। अतः चाहे वह मिश्र के पिरामिड हों, बेबीलोन के जिगुरात हों या बर्मा के पगोडा सबकी ढाँचा शैली में एक समानता देखने को मिलती है जो यह स्पष्ट करती है कि इन सबका प्राचीन मूल आधार अष्टापद पर निर्मित स्तूप एवं मन्दिर रहे हैं।

इन सब तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कैलाश की अपेक्षा अष्टापद का दायरा विशाल है जिसमें पूरी कैलाश श्रृँखला समाहित है। आदि तीर्थकर की पुण्य भूमि होने के कारण इसकी पवित्रता एवं पूज्यता प्राचीन काल से परम्परा के रूप में अक्षुण्य रूप से चली आ रही है। साहित्य में उपलब्ध वर्णन के अनुसार अनेक महान् आत्माओं ने इस तीर्थ की समय-समय पर यात्रा की। दुर्भाग्यवश भौगोलिक एवं राजनैतिक कारणों से जब इस सिद्ध क्षेत्र में आवागमन अवरुद्ध हो गया तो इसकी स्मृति को जीवन्त बनाये रखने के लिये अपने-अपने पहुँच के क्षेत्र में अष्टापद जिनालय बनाये गये और उनके दर्शन पूजा से अष्टापद को चिरकाल से धरोहर के रूप में अपनी स्मृति में संजोकर रखा। सभी बड़े-बड़े तीर्थ

स्थानों और मन्दिरों में अष्टापद जिनालय बने हुए हैं। कोलकत्ता के बड़ाबाजार मंदिर में अष्टापद बना हुआ है। फलौदी के मन्दिर में तथा बिहार में भागलपुर और पटना के बीच में १७ वीं शताब्दी में भगवन्त दास श्रीमाल द्वारा स्थापित तीर्थ में अष्टापद बना हुआ है। श्रेष्ठी वस्तुपाल द्वारा गिरनार पर्वत के शिखर पर अष्टापद, सम्मेतशिखर मण्डप एवं मरुदेवी प्रसाद निर्मित कराये गये। प्रबन्ध चिन्तामणि एवं वस्तुपाल चरित्र के अनुसार प्रभास पाटन में वस्तुपाल द्वारा अष्टापद प्रसाद का निर्माण कराया था। तारंगा तीर्थ में अष्टापद निर्मित किया गया है। शत्रुघ्न्य तीर्थ में आदिनाथ जिनालय के बाईं तरफ सत्यपुरियावतार मन्दिर के पीछे अष्टापद जिनालय बना हुआ है। जैसलमेर के विश्वविख्यात जिनालयों में भी अष्टापद प्रसाद है जिसके ऊपर शांतिनाथ जिनालय है। अष्टापद प्रसाद के मूल गभारे में चारों ओर ७-५-७-५ - चौबीस जिनेश्वरों की प्रतिमाएँ स्परिकर हैं। हस्तिनापुर जहाँ भगवान् ऋषभदेव स्वामी का प्रथम पारणा हुआ था भव्य अष्टापद जिनालय का निर्माण कराया गया। इस प्रकार अनेकों तीर्थों और मन्दिरों में अष्टापद जिनालय निर्मित किये गये हैं। ये परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसी शृँखला में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में डॉ. रजनीकान्त शाह द्वारा जैन मन्दिर निर्मित कराया गया जिसमें अष्टापद का निर्माण कराया जा रहा है। अष्टापद के ऊपर उपलब्ध साहित्य भी उन्होंने प्रकाशित किया है। इसी सन्दर्भ में जनवरी २००५ में अष्टापद पर अहमदाबाद में विद्वानों की एक संगोष्ठी भी कराई गयी।

इस प्रकार जैन साहित्य में आचारांग निर्युक्ति से लेकर वर्तमान युग में श्री भरत हंसराज शाह के लेखों और चित्रों में हमें अष्टापद पर मन्दिरों और स्तूपों के निर्माण का विस्तृत और सुनियोजित वर्णन मिलता है, जो परम्परा के रूप में आज भी जैन तीर्थों और मन्दिरों में जीवन्त है। जैन धर्म के प्राचीन इतिहास की महत्वपूर्ण कढ़ी के रूप में अष्टापद की खोज और उसकी प्रामाणिकता साहित्यिक उल्लेखों से और परम्पराओं से स्थापित हो जाती है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है जिससे विश्व इतिहास को केवल एक नया आयाम ही नहीं मिलेगा बल्कि मानव सभ्यता और संस्कृति के आदि स्रोत का पता चल सकेगा। यह हमारी अस्मिता की पहचान है और भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता का अकाट्य प्रमाण भी।



## *Chapter 3*

---

*Bhagwan Rushabhdev*

## સુપાર્થ-ચંદ્રમભુ-સુવિધિનાથ જિન વંદના...

જિણવર-સુપાસ ! રક્ખસુ, પુઢીમલયમ્મિ ચંદળસરિચ્છ ! |  
સિરિયપઙ્ગનિવકુલાઽહારવરત્થંમ ! અમ્હે વિ ||૭||

શ્રી પ્રતિષ્ઠ રાજના કુણ્ણપી ગૃહના પ્રતિષ્ઠાસ્તંભરૂપ અને પૃથ્વી માતારૂપ  
મલયાચલમાં ચંદન સમાન હે સુપાર્થનાથ ! મારી રક્ષા કરો. ૭

મહસેણકુલમયંકો !, લક્ખમણાકુચિખમાણસમરાલ ! |  
ભયવં ચંદપહજિણ !, તારસુ અમ્હે ભવોદહિઓ ||૮||

મહાસેણ રાજના વંશરૂપી આકાશમાં ચંદ્ર સમાન અને લક્ષ્મણા દેવીની કુક્ષિરૂપી  
સરોવરમાં હુંસ સમાન એવા હે ચંદ્રમભુ ! તમે અમારી રક્ષા કરો. ૮

સુગ્રીવતણય ! રામા-દેવી-ણંદળવણુંબિકપ્પતરૂ ! |  
સુવિહિનિણો મજ્જ દિસસુ, પરમપયપયાસગં મજં ||૯||

સુગ્રીવરાજના પુત્ર અને શ્રીરામાદેવી રૂપ નંદનવનની ભૂમિમાં કલ્પવૃક્ષ રૂપ એવા  
હે સુવિધિનાથ ! અમારું શીંગ કલ્યાણ કરો. ૯

## 1

## ॥ श्री ऋषभपञ्चाशिका ॥

धनपाल

प्रस्तावना :

ऋषभपञ्चाशिका ग्रंथ श्री ऋषभदेव भगवाननी काव्यात्मक स्तुतिनो अद्भूत ग्रंथ છે. તેમાં કવિશ્રી ધનપાલે અથ્વ શબ્દોમાં ભગવાન ઋषભદેવનું જીવન ચરિત્ર સુંદર રીતે વર્ણવ્યું છે.

जयजन्तुकल्पपादप ! चन्द्रायव ! रागपंक्यवणस्स ।  
सयलमुणिगामगामणि ! तिलोअचूडामणि ! नमो ते ॥१ ॥

(जगज्जन्तुकल्पपादप ! चन्द्रायव ! रागपञ्चजवनस्य ।  
सकलमुनिग्रामग्रामणी- स्त्रिलोकचूडामणे ! नमस्ते ॥)

હે જગત્ના જીવો પ્રતિ વાંछિત ફળ આપનાર હોવાથી કલ્પવક્ષ (સમાન યોગીશર) ! રાગડ્રૂપી (સૂર્ય વિકાસી) કભલોના વન પ્રતિ (તેને નિભીલન કરનાર હોથાવી) ચન્દ્ર-ગ્રભા (તુલ્ય પરમેશ્વર) ! હે સકલ (કણાથી યુક્ત એવા) મુનિ-ગુણના નાયક ! હે સ્વર્ગ, મૃત્યુ અને પાતાળ (અથવા અધોલોક, મધ્યલોક અને ઉધ્વરલોક) રૂપી ત્રિભુવનની (સિદ્ધશિલારૂપી) યૂડાને વિષે (તેના શાશ્વત મંડનરૂપ હોવાને લીધે) મણિ (સમાન ઋષભદેવ ! સ્વામિન् !) આપને (મારો ત્રિકરણ શુદ્ધિપૂર્વક) નમસ્કાર હો. (૧)

जय रोसजलणजलहर ! कुलहर ! वरनाणदंसणसिरीणं ।  
मोहतिमिरोहदिण्यर !, नयर ! गुणगणाण पउराणं ॥२ ॥

(जय રોષજ્વલનજલધર ! કુલગૃહ ! વરજ્ઞાનર્દર્શનશ્રિયોः ।  
મોહતિમિરૌઘદિનકર ! નગર ! ગુણગણાનાં પૌરાણામ् ॥)

હે કોધરૂપી અગ્નિને (શાંત કરવામાં) ભેદ (સમાન) ! હે ઉત્તમ (અપ્રતિપાતી) જ્ઞાન અને દર્શનની (અથવા જ્ઞાન અને દર્શનરૂપી) લક્ષ્મીઓના (આનંદ માટે) કુલ-ગૃહ (તુલ્ય) ! હે અજ્ઞાનરૂપી અંધકારના સમૂહનો (અંત આણવામાં) સૂર્ય (સમાન) ! હે (તપ, પ્રશામ ઈત્યાદિ) ગુણોના સમુદ્ધારૂપ નાગરિકોના (અથવા અનેક ગુણોના સમુદ્ધારોના નિવાસ માટે નગર તુલ્ય ! આપ જ્યવંત-સર્વોત્કૃષ્ટ વર્તો. (૨)

दिट्ठो कहवि विहडिए, गंठिम्मि कवाडसंपुडघणंमि ।  
मोहंधयारचारयगएण जिण ! दिणयरुव्व तुमं ॥३॥

(दृष्टः कथमपि विघटिते ग्रन्थौ कपाटसम्पुटघने ।  
मोहान्धकारचारकगतेन जिन ! दिनकर इव त्वम् ॥)

(अनेक भवोथी अेकत्रित थअेल होवाथी) द्वारना युगल जेवी गाढ (राग-द्वेषना परिणामउप) गांठनो ज्यारे महामहेनते नाश थयो, त्यारे हे जिनेश्वर ! (२८ प्रकारना) मोहउपी अंधकारथी व्याप्त थवा कारागृहमां रहेला भने सूर्य समान आपनुं दर्शन थयुं. (३)

भविअकमलाण जिणरवि ! तुह दंसणपहरिसूससंताणं ।  
दढबद्धा इव विहडंति, मोहतमभमरविंदाइं ॥४॥

(भव्यकमलेभ्यो जिनरवे ! त्वदर्शनप्रहर्षोच्छ्वसदृभ्यः ।  
दृढवद्धानीव विघटन्ते मोहतमोभमर वृन्दानि ॥)

(भिथ्यात्वउपी रात्रिनो नाश करनारा अने सन्मार्गना प्रकाश करनारा ऐवा) हे जिन-सूर्य ! आपना दर्शनउपी प्रकृष्ट आनंदथी विकसित थयेलां भव्य कमणोमांथी-दृढ बंधाअेला ऐवा पणा-मोहान्धकारउपी भमरोना समुदायो छूटा पडी जाय छे. (४)

लटुत्तणाहिमाणो, सब्बो सब्बटुसुरविमाणस्स ।  
पडं नाह ! नाहिकुलगर-, घरावयारूम्मुहे नटो ॥५॥

(शोभनत्वाभिमानः सर्वः सर्वार्थसुरविमानस्य ।  
त्वयि नाथ! नाभिकुलकर, गृहावतारोन्मुखे नष्ट ॥)

हे नाथ ! ज्यारे आप नाभि (नाभना सातमा) कुलकरना गृहमां अवतार लेवाने तैयार थया ज्यारे आप तेमना धरमां अवतर्या, त्यारे सर्वार्थसिद्ध नाभना देव विभाननो सुंदरता (प्रधानता) संबंधी समस्त गर्व गणी गयो. (५)

पडं चिंतादुल्लहमुक्खसुक्खफलए अउव्वकप्पतुमे ।  
अवइन्ने कप्पतरु जयगुरु ! हित्था इव पओत्था ॥६॥

(त्वयि चिन्तादुर्लभमोक्षसुखफलदेऽपूर्वकल्पद्रमे ।  
अवतीर्णे कल्पतरवो जगद्गुरो ! ह्रीस्था इव प्रोषिताः ॥)

संकल्प वडे हुर्लभ ऐवा मोक्षना सुभउप इणने आपनारा ऐवा अपूर्व कल्पवृक्ष (आ पृथ्वी उपर) अवतर्या अेटले हे विश्वना गुरु ! कल्प वृक्षो जाणे शरभार्थ गया होय तेम अदृश्य थई गया.(६)

अरएणं तडएणं, इमाइ ओसप्पिणीइ तुह जम्मे ।  
फुरिअं कणगमएणं, व कालचक्किक्कपासंमि ॥७॥

(अरकेण तृतीयेनास्यामवसप्पिण्यां तव जन्मनि ।  
स्फुरितं कनकमयेनेव कालचक्रैकपाश्च ॥)

કાલ-યક્ષના એક પડખે આ અવસર્પિણી (કાલ) માં આપના જન્મને વિષે ત્રીજો આરો સુવાર્ણમય હોય તેમ શોભી રધ્યો. (૭)

જમ્મિ તુમં અહિસિન્તો, જત્થ ચ સિવસુખસંપદં પત્તો ।  
તે અદૃબયસેલા, સીસાભેલા ગિરિકુલસ્ય ॥૮॥

(યત્ર ત્વમભિષિક્તો યત્ર ચ શિવસુખસંપદં પ્રાપ્તઃ  
તાવષ્ટાપદશૈલૌ, શીર્ષાપીડૌ ગિરીકુલસ્ય ॥)

જે સુવાર્ણના ગિરિ ઉપર આપનો (જન્મ) અભિષેક થયો તે એક અષ્ટાપદ (મેરુ) પર્વતે તેમજ જ્યાં આપ શિવ સુખની સંપત્તિ (નિર્વાણા)ને પાખ્યા મે (વિનીતા નગરીની સમીપમાં રહેલો આઠ પગથીઆવાળો) બીજો અષ્ટાપદ પર્વત, એ બે પર્વતો (સમસ્ત) પર્વતોના સમૂહના ભસ્તકને વિષે મુકુટરૂપ થયા. (૮)

ધ્રા સવિમ્હયં જોહિં, ઇત્તિ કયરજજમજ્જણો હરિણા ।  
ચિરધરિઅનલિણપત્તાડભિસે અસલિલેહિં દિદ્ધો સિ ॥૯॥  
(ધન્યા: સવિસ્મયં યૈઝ્ઞાટિતિ કૃતરાજ્યમજ્જનો હરિણા ।  
ચિરઘૃતનલિનપત્રાભિષેકસલિલૈર્દૃષ્ટોડસિ ॥)

હે જગત્થ ! ઈંદ્ર દ્વારા જલદી રાજ્યાભિષેક કરાયેલા એવા આપને વિસ્મયપૂર્વક લાંબા કાળ સુધી કમળનાં પત્રો વડે અભિષેક-જલધારણ કરવાપૂર્વક જે (યુગલિકોએ) જોયા તેઓ ધન્ય છે. (૯)

દાવિઅવિજ્જાસિષ્પો, વજ્જરિઆસેસલોઅવવહારો ।  
જાઓ સિ જાણ સામિઅ, પયાઓતાઓ કયત્થાઓ ॥૧૦॥  
(દર્શિતવિદ્યાશિલ્પો વ્યાકૃતાશેષલોકવ્યહારઃ ।  
જાતોડસિ યાસાં સ્વામી પ્રજાસ્તાઃ કૃતાર્થઃ ॥)

જેમણે (શબ્દ-લેખન-ગણિત-ગીત ઈત્યાદિ) વિદ્યાઓ અને (કુંભકારાદિક) શિલ્પો દેખાડ્યાં છે, તેમજ જેમણે (ખેતી, પશુ-પાલન, વાણિજ્ય, લગ્ન ઈત્યાદિ) સમસ્ત પ્રકારનો લોક-વ્યવહાર પણ સારી રીતે સમજાવ્યો છે, એવા આપ જે પ્રજાઓના સ્વામી થયા છો, તે પ્રજા પણ કૃતાર્થ છે. (૧૦)

બંધુવિહતવસુમર્ઝ વચ્છરમચ્છિન્નદિભધણનિવહો ।  
જહ તં તહ કો અન્નો નિઅમધુરં ધીર ! પડિવજ્ઞો ॥૧૧॥  
(બંધુવિભક્તવસુમતિઃ વત્સરમચ્છિન્નદત્તધનનિવહઃ ।  
યથા ત્વં તથા કોડન્યો નિયમધુરાં ધીર ! પ્રતિપત્રઃ ॥)

જેમણે (ભરતાદિક પુત્રો અને સામન્તોરૂપી) બાન્ધવોમાં પૃથ્વી વહેંચી આપી છે તથા જેમણે એક વર્ષ પર્યાત નિરંતર ધનના સમૂહનું દાન કર્યું છે, એવા આપે જેવી રીતે (દીક્ષા-સમ્યે સમસ્ત પાપમય આચરણના ત્યાગરૂપી) નિયમ ધુરાને ધારણ કરી, તેવી રીતે હે ધીર ! અન્ય કોણ ધારણ કરી શકે? (૧૧)

सोहसि पसाहिअंसो कज्जलकसिणाहिं जयगुरु जडाहिं ।  
उवगूढविसज्जिअरायलच्छिबाहच्छडाहिं व ॥१२॥

(शोभसे प्रसाधितांसः कज्जलकृष्णाभिर्जगद्गुरोजटाभिः ।  
अपगूढविसर्जितराजलक्ष्मीबाष्पछटाभिरिव ॥)

હે જગદ્ગુરુ ! (રાજ્ય સમયે) આદિંગન કરાયેલી અને (દીક્ષા-સમયે) ત્યાગ કરાયેલી એવી રાજ્ય  
લક્ષ્મીની જ્ઞાને અશ્રુધારા જ હોય તેવી કાજળના જેવી શ્યામ જટા વહે અલંકૃત સુંધરવાળા આપ શોભી રહ્યા  
હો. (૧૨)



## ॥ कर्मयोगी और आत्मधर्म-प्रणेता भगवान् ऋषभदेव ॥

प्रेमसुमन जैन

भारतीय संस्कृति में जो प्राचीन कृषि, मुनि और आत्मविद्या के सिद्धस्त महात्मा हुए हैं, उनमें भगवान् ऋषभदेव का प्रमुख स्थान है। ऋषभदेव भारतीय संस्कृति और चिन्तन के विकास के पुरोधा हैं। श्रमण संस्कृति के आदि प्रवर्तक के रूप में उन्हें प्राचीन साहित्य और पुरातत्व में स्मरण किया गया है। भारत में प्रचलित जैन धर्म को साम्यता के प्रारम्भिक काल में श्रमण, ब्रात्य, आर्हत, निर्ग्रन्थ आदि नामों से जाना जाता था। वैदिक साहित्य में इन शब्दों का प्रयोग जैन धर्म के अर्थ में किया गया है और भगवान् ऋषभदेव को जैनधर्म का आदि प्रवर्तक माना गया है। जैन पुराणकारों ने भी भगवान् ऋषभदेव के चरित्र में यहीं चित्रण किया है। उन्हें कृषि सभ्यता और नागरिक जीवन का जन्मदाता भी माना है। भगवान् ऋषभदेव द्वारा ही स्थापित जैन धर्म को नेमिनाथ, पाश्वनाथ एवं महावीर ने अपने युग के अनुसार विभिन्न रूपों में विकसित किया है। जैनधर्म के आदि प्रणेता भगवान् ऋषभदेव का संक्षिप्त जीवन चरित इस प्रकार है।

### \* पूर्वज :

जैन मान्यता के अनुसार सृष्टि का कोई आदिकाल नहीं होता और न ही कोई अंतिम काल। सृष्टि निरन्तर कालचक्र के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। इसी परिवर्तन के प्रारम्भिक कल्प में भगवान् ऋषभदेव का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, जिसे आधुनिक इतिहासकार आदि मानव का पाषाण युग कहते हैं। उस समय मनुष्य अविकसित था। उसे सामाजिक बोध नहीं था। भर्ता-बहिन ही पति-पत्नी के रूप में रहने लगते थे, इसे युगलियां संस्कृति का काल कहा जाता है। उस समय वृक्षों से ही जीवन निर्वाह हो जाता था। अतः मनुष्य कोई कर्म नहीं करता था। इस कारण उस वन-संस्कृति को भोग युग भी कहा गया है। जैन पौराणिक मान्यता के अनुसार उस समय चौदह कुलकर हुए हैं, जो तत्कालीन मनुष्यों को जीवन-निर्वाह के कार्यों की शिक्षा देते थे। ऐसे कुलकरों में चौदहवें कुलकर श्री नाभिराज हुए, जिन्होंने भोग-भूमि के लोगों को कर्मभूमि की ओर गमन करना सिखाया। इनको मनु भी कहा गया है। इन्हीं नाभिराज और उनकी पत्नी मरुदेवी के पुत्र के रूप में ऋषभदेव का जन्म हुआ।

### \* जन्म एवं परिवार :

ऋषभदेव के जीवन आदि के सम्बन्ध में जो विवरण तिलोयपण्णति, आदिपुराण, हरिवंशपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं उसके अनुसार ऋषभदेव का जीव आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन महारानी

मरुदेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। नौ माह पूर्ण होने पर चैत्र कृष्ण नवमी के दिन सूर्योदय के समय मरुदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिस पर इन्द्र इत्यादि देवों ने जन्मोत्सव मनाया। माता मरुदेवी के द्वारा देखे गए स्वप्नों में वृषभ (बैल) की प्रमुखता होने के कारण बालक का नाम भी वृषभदेव रख दिया गया, जिसका अर्थ है- श्रेष्ठ धर्मप्रणेता। माता-पिता उन्हें ऋषभ नाम से पुकारते थे। ऐसी मान्यता है कि ऋषभदेव जन्म से ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के धारक थे। उनके शरीर और बाल्यकाल की अनेक विशेषताएँ साहित्यकारों ने अंकित की हैं।

भगवान् ऋषभदेव तीर्थङ्कर परम्परा के प्रथम तीर्थङ्कर हैं। अतः मान्यता के अनुसार उन्होंने स्वयं बिना किसी को गुरु बनाए अनेक विद्याओं और कलाओं की शिक्षा प्राप्त की। युवावस्था प्राप्त होने पर नाभिराज ने यशस्वती और सुनन्दा नामक कन्याओं से ऋषभदेव का विवाह किया। आवश्यक नियुक्ति में इनके नाम सुमंगला और सुनन्दा मिलते हैं। समय आने पर महादेवी यशस्वती ने पुत्र भरत और ब्राह्मी नामक पुत्री को जन्म दिया। बाद में इनके ९८ पुत्र भी हुए। ऋषभदेव की दूसरी रानी सुनन्दा से पुत्र बाहुबली और पुत्री सुन्दरी का जन्म हुआ। अभिधान राजेन्द्रकोश में इन सौ पुत्रों के नाम भी मिलते हैं। श्रीमद्भागवत में भी ऋषभदेव के सौ पुत्रों का उल्लेख है, जिनमें भरत सबसे बड़े थे।

#### \* विद्या एवं कलाओं की शिक्षा :

भगवान् ऋषभदेव अपने पिता नाभिराज की भाँति अपने युग की जनता को उनके जीवन-निर्वाह के क्षेत्र में विभिन्न कर्मों की शिक्षा प्रदान करते रहते थे। शिक्षा के क्षेत्र में उनका विशेष योगदान माना जाता है। स्त्री-शिक्षा के ऋषभदेव प्रथम गुरु हैं। ऋषभदेव ने साहित्य के तीनों अंगों-व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र और अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों की स्वयं रचना की और उन्हें अपनी पुत्रियों को भी पढ़ाया। उन्होंने ब्राह्मी पुत्री को लिपिविद्या (वर्णमाला) लिखना सिखाया और पुत्री सुन्दरी को अंकविद्या (संख्या) लिखना सिखाया। इस प्रकार लिपिविद्या और अंकविद्या का अविष्कार भगवान् ऋषभदेव द्वारा हुआ। उन्होंने अपने ज्येष्ठपुत्र भरत को अर्थशास्त्र और नृत्यशास्त्र सिखाया। वृषभसेन नामक पुत्र को गंधर्वशास्त्र की शिक्षा दी। अनन्त विजय नामक पुत्र को चित्रकला का अभ्यास कराया। प्राचीन शास्त्रों से पता चलता है कि ऋषभदेव ने बहतर कलाओं और चौसठ विज्ञानों की शिक्षा अपने पुत्रों को देकर उनकी शिक्षा का प्रसार जनमानस में भी किया। इस प्रकार ऋषभदेव ने शिक्षा के द्वारा भोगयुग को कर्मयुग में बदलने के लिए अपूर्व श्रम और पुरुषार्थ किया।

#### \* कृषि संस्कृति और नागर-सभ्यता का पाठ :

कल्पवृक्षों के निरन्तर कर्मी होने के कारण उस युग के मनुष्यों के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती थी। अतः लोग राजा नाभिराज के पास गए। उन्होंने प्रजा की समस्याओं के समाधान के लिए राजकुमार ऋषभ को संकेत किया। तब ऋषभदेव ने प्रजा को कर्म करने की शिक्षा देते हुए असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छः कर्मों को करने की जानकारी प्रदान की। आदिपुराण और आवश्यक चूर्णि में तत्कालीन आजीविका के विभिन्न उपायों और कार्यों का वर्णन प्राप्त होता है। इन छः कर्मों से अनाज तो प्राप्त होता था किन्तु उसे पकाकर कैसे खाया जाय, इससे लोग अभिज्ञ थे। तब ऋषभदेव ने प्रजा को अग्नि के उपयोग की जानकारी कराई और कुम्हार के पहिये (चाक) के उपयोग द्वारा बर्तनों के निर्माण और गति की शिक्षा दी। इस प्रकार इन विभिन्न कर्मों द्वारा वन-संस्कृति के लोगों

ने कृषि संस्कृति और नागरिक-सभ्यता के जीवन में प्रवेश किया। उस समय की प्रजा ने इन कार्यों की जानकारी के प्रति ऋषभदेव को प्रजापति की उपाधि से भी सम्बोधित किया है। यथा-

**प्रजापतिर्यः प्रथमं जीनिविषुः शशास्त्र कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।**

-(स्वयम्भू स्त्रोत)

आजीविका और व्यवसाय की व्यवस्था प्रारम्भ होने से समाज में वर्णों का भी निर्माण हुआ, जो कार्यकुशलता और गुणों के आधार पर था। जो विपत्ति से रक्षा करते थे वे क्षत्रिय कहलाए, और जो जीवन-निर्वाह के लिए कृषि, व्यापार, पशुपालन आदि कार्य करते थे वे वैश्य कहलाए। शिल्प द्वारा आजीविका और सेवा करने वाले को शुद्र कहा गया। महाभारत के शान्तिपर्व में ऋषभदेव को आदिदेव भी कहा गया है क्योंकि वे छात्र धर्म के आदि प्रवर्तक थे। क्षत्रियों में से ही अहिंसा जीवन शैली को अपनाने वाले लोग बाद में ब्राह्मण के नाम से जाने गए। इसी समय आतप, वर्षा और शीत आदि से रक्षा के लिए विभिन्न भवनों, नगरों और जनपदों का निर्माण हुआ। इस प्रकार कबीलों की सभ्यता से नागर सभ्यता में प्रवेश कराने वाले ऋषभदेव को आदि ब्रह्मा भी कहा गया है।

#### \* राज्य एवं दण्ड व्यवस्था :

जैसे-जैसे समाज नागर-सभ्यता का अभ्यासी हुआ वैसे ही वहाँ विवाह-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था की भी आवश्यकता हुई। ऋषभदेव ने इस सम्बन्ध में भी मार्गदर्शन किया और प्रजा की इच्छा से जब उन्हें पिता नाभिराज ने राजा बनाया तब ऋषभदेव ने राज्यतन्त्र और दण्ड-व्यवस्था का भी विधान किया। उस समय के राजाओं में दण्डधर राजा और महामण्डलिक राजा के पद भी निर्मित हुए। कुरुवंश और सोमवंश की स्थापना भी हुई। इस प्रकार ऋषभदेव ने समाज की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न नागरिक व्यवस्थाओं का सूत्रपात किया। उनके विविध लोकोपयोगी कार्यों से प्रभावित होकर ऋषभदेव के लिए इक्ष्वाकु, गौतम, काश्यप, पुरु, कुलधर, विश्वकर्मा आदि नाम भी प्रचलित हो गए थे।

#### \* तपस्वी जीवन :

ऋषभदेव ने कर्मभूमि की रचना करके जन-कल्याण तो कर लिया था किन्तु वे आत्मकल्याण के मार्ग को नहीं भूले थे। जीवन के प्रसंगों से उन्हें संसार की दशा और मनुष्य जीवन की सार्थकता का बोध बना हुआ था। एक दिन राजदरबार में नर्तकी नीलांजना की अचानक मृत्यु देखकर ऋषभदेव के मन में सांसारिक भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो गया। अन्य ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उपवन में भ्रमण करते हुए पुष्पों की क्षणिकता देखकर उन्हें वैराग्य जन्मा था। ऋषभदेव के विरक्ति भाव की प्रशंसा देवों ने भी आकर की। ऋषभदेव ने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य देकर और अन्य पुत्रों को विभिन्न देशों के राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। जिस स्थान पर उन्होंने दीक्षा ली थी वह स्थान प्रजाग/प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

ऋषभदेव ने मुनि अवस्था में कठोर तपस्या की। उनकी जटाएँ भी बढ़ गईं। इस कारण उनका केशी नाम भी प्रसिद्ध हो गया। साधक जीवन में सर्वप्रथम राजा श्रेयांस ने ऋषभदेव को जिस दिन इक्षुरस का प्रथम आहार दिया वह दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पुराणों से ज्ञात होता है कि ऋषभदेव ने एक हजार वर्षों तक मुनि अवस्था में अनेक देशों में विहार किया। अन्त में पुरिमताल नगर,

प्रयाग के उद्यान में एक वटवृक्ष के नीचे वे ध्यानस्थ हो गए। तब उन्हें फागुन सुदी एकादशी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वहाँ पर आकर कुबेर ने समवसरण की रचना की। देवों की प्रार्थना पर भगवान् क्रष्णभद्रेव ने दिव्यध्वनि द्वारा उपदेश देकर धर्मचक्र-प्रवर्तन किया, जिससे सभी प्राणी लाभान्वित हुए। परम्परा से ज्ञात होता है कि भगवान् क्रष्णभद्रेव के संघ में मुनियों की संख्या चौरासी हजार थी और साढ़े तीन लाख आर्थिकाएँ थीं। श्रावक-श्राविकाओं की संख्या आठ लाख थी। इससे ज्ञात होता है कि क्रष्णभद्रेव द्वारा प्रतिपादित तत्कालीन जैन धर्म लोकर्धर्म था।

### \* कैलाश पर्वत से निर्वाण :

भगवान् क्रष्णभद्रेव सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त सम्पूर्ण देश में बिहार करते हुए जनमानस को धर्म स्वरूप समझाते रहे। यह वही आत्मधर्म था जो आगे चलकर श्रमण परम्परा और जैन धर्म के नाम से विख्यात हुआ। क्रष्णभद्रेव ने पहले गृहस्थ जीवन में प्रजा के भौतिक जीवन और आहार-विहार को बदला तथा आत्मदर्शी और केवलज्ञानी बनकर जनमानस के आचार-विचार को बदल दिया। इस प्रकार क्रष्णभद्रेव लोगों के लिए महादेव के रूप में स्थापित हो गए। अन्त में उन्होंने कैलाशपर्वत पर जाकर ध्यान लगाया और उन्हें माघ कृष्णा चर्तुदर्शी को निर्वाण की प्राप्ति हो गई। यही तिथि शिवजी के लिंग-उदय की मानी जाती है, जिसके स्मरण में शिवरात्रि पर्व मनाया जाता है। कैलाश पर्वत प्राचीन भारतीय संस्कृति के आदिदेव क्रष्णभ का मोक्ष-प्राप्ति-स्थल होने से तीर्थ बन गया। और क्रष्णभद्रेव समग्र भारतवासियों के आदिदेव बन गए। जैन सम्प्रदाय के जिस प्रकार वे प्रथम तीर्थकर हैं उसी प्रकार वैदिक परम्परा के लोगों के लिए वे राम और कृष्ण से भी प्राचीन कल्याणकारी देवता हैं, जिन्हें विष्णु भगवान् का अवतार माना जाता है। इसीलिए अथववेद (१९.४२.४) में कहा गया है कि- सम्पूर्ण पापों से मुक्त तथा अहिंसक वृत्तियों के प्रथम राजा, आदित्य स्वरूप श्री क्रष्णभद्रेव का मैं आवाहन करता हूँ। वे मुझे बुद्धि एवं इन्द्रियों के साथ बल प्रदान करें-

अहो मुंचं वृषभ याज्ञिमानां विराजन्तं प्रथमध्वराणाम् ।  
अपां न पानमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण इन्द्रियंदत्तभोगः ॥

### \* पुरातत्व और समन्वय के आधार :

भारत की प्राचीन परम्पराओं और साहित्य में योगी क्रष्णभद्रेव आत्मधर्म के आदि महापुरुष सिद्ध होते हैं। पुरातत्वविद् रायबहादुर चन्दा का कथन है कि सिन्धुघाटी की मोहरों में एक मूर्ति में मथुरा से प्राप्त क्रष्णभद्रेव की खड़गासन मूर्ति के समान त्याग और वैराग्य के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी भी मानते हैं कि मोहनजोदड़ो के कायोत्सर्ग देवताओं का साम्य क्रष्णभद्रेव के योगीरूप से है। अतः शैवधर्म की तरह जैन धर्म का मूल भी ताम्रयुगीन सिन्धुसभ्यता तक चला जाता है। डॉ. एन.एन वसु का मत है कि लेखनकला और ब्रह्मविद्या का आविष्कार क्रष्णभद्रेव ने किया था। अनेक पुरातत्वविदों ने निष्कर्ष दिया कि क्रष्णभादि २४ तीर्थঙ्करों की मान्यता सुदूर प्राचीनकाल में प्रचलित थी।

क्रष्णभद्रेव की इसी प्राचीनता के कारण क्रष्णभद्रेव और शिव के स्वरूप एवं व्यक्तित्व में कई समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। शिवपुराणों में तो स्पष्ट कहा गया है कि आदिदेव शिवलिंग के रूप में प्रकट हुआ है और शंकर का क्रष्ण अवतार होगा। शिवजी का दिग्म्बरत्व रूप, जटाधारी, तपस्वी, अपरिग्रही, नान्दीवाहन,

कैलाश पर्वत शिवधाम, गंगावतरण, आदि अनेक प्रसंग/विशेषताएँ ऋषभदेव के जीवन से भी जुड़ी हुई हैं। दोनों अवैदिक देवता हैं और लोक देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं। कामदेव पर दोनों ने विजय प्राप्त की है और आत्मज्ञान का तृतीय नेत्र प्रकट किया है। अतः ऋषभदेव किसी जाति, सम्प्रदाय, वर्ग विशेष के देवता नहीं हैं, अपितु वे आत्मधर्म के आदि प्रणेता हैं जिन्होंने कर्म और धर्म की समान रूप से शिक्षा दी है। वास्तव में ऋषभदेव भारतीय संस्कृति के समन्वय के सूत्र हैं, जिसमें सभी धर्म सरोवर आकर आश्रय पाते हैं और उनमें अनेकान्त का कमल खिलता है। प्राचीन मनीषी पं. सुखलाल संघवी ने यह निष्कर्ष ठीक ही दिया है कि- “ऋषभ जीवन बहुत दीर्घकाल से आर्यजाति का आदर्श माना जाता रहा है। और समस्त मानव जाति का विशुद्ध आदर्श बनने की योग्यता भी रखता है।” ऋषभदेव परिपूर्ण पुरुष थे। उन्होंने काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को स्वयं जिया और दूसरों के लिए इनके आदर्श स्थापित किये। मानवीय गुणों के विकास की सभी सीमाएँ उन्होंने उद्घाटित की हैं, यही सच्चा जैन धर्म है। मूर्त और अमूर्त जगत् के बीच, प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच, अभाव और प्रभाव के बीच सन्तुलन स्थापित करने की कला भगवान् ऋषभदेव ने मानव को सिखायी यही उनका अवदान है। यही उनकी पहिचान है। वर्तमान युग का जैनधर्म तो ऋषभदेव द्वारा प्रस्तुपित आत्मधर्म के पौथे की अनेक फसलों में से एक अनमोल फल है।

#### सन्दर्भ :

१. तिलोयपण्णति (यतिवृषभ)
२. आदिपुराण (जिनसेन)
३. हरिवंशपुराण (जिनसेन)
४. आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि एवं वृत्ति (आगमोदय समिति)
५. भगवान् ऋषभदेव-एक परिशीलन-(देवेन्द्र मनि)
६. जैनधर्म- (पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री)
७. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास- (पं. बलभद्र जैन)
८. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान-(डॉ. हीरालाल जैन)
९. चार तीर्थकर- (पं. सुखलाल संघवी)
१०. हिन्दू सभ्यता- (राधा कुमुद मुख्यर्जी)
११. हिन्दी विश्वकोश, जिल्द। एवं ३
१२. धम्मकहाणुयोगो- मुनि कन्हैयालाल “कमल”, भाग-१



### 3

## ॥ जैन महापुराण : कलापरक अध्ययन ॥

पी. एल. वैद्य

प्रस्तावना :

जैन पुराणों में महापुराण निःसन्देह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और विस्तृत है।

इस ग्रन्थ में लेखिका ने एलोरा की जैन गुफाओं एवं महापुराण की कलापरक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन का यथेष्ट प्रयत्न किया है।

यहाँ इस लेख में ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में से क्रष्णभनाथ के जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं की विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

\* क्रष्णभनाथ (या आदिनाथ) :

आदिपुराण में क्रष्णभनाथ को वृषभदेव कहा गया है जो एक ओर शिव और दूसरी ओर उनके वृषभ लांछन से सम्बन्धित है। ज्ञातव्य है कि क्रष्णभदेव का लांछन वृषभ है। वृषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थकरों में आद्य तीर्थकर हैं और इन्हीं से जैन धर्म का प्रारम्भ माना जाता है। आद्य तीर्थकर होने के कारण ही इन्हें आदिनाथ भी कहा गया है।

जैन पुराणों में इनके जीवन, तपश्चरण, केवलज्ञान व धर्मोपदेश के विस्तृत विवरण के साथ ही वैदिक साहित्य जैनेतर पुराणों तथा उपनिषदों आदि में भी इनका उल्लेख हुआ है।<sup>१</sup> पउमचरिय में २४ तीर्थकरों की वन्दना के प्रसंग में क्रष्णभनाथ को जिनकरों में वृषभ के समान श्रेष्ठ तथा सिद्धदेव, किन्नर, नाग, असुरपति एवं भवनेन्द्रों के समूह द्वारा पूजित बताया गया है। इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर क्रष्णभनाथ को स्वयंभू, चतुर्मुख, पितामह, भानु, शिव, शंकर, त्रिलोचन, महादेव, विष्णु हिरण्यगर्भ, महेश्वर, ईश्वर रुद्र और स्वयं सम्बुद्ध आदि नामों से देवता एवं मनुष्यों द्वारा वंदित बताया गया है।<sup>२</sup> इन्हें प्रथम नृप, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थकर तथा प्रथम धर्मचक्रवर्ती कहा गया है।<sup>३</sup> शिवपुराण में शिव के आदि तीर्थकर क्रष्णभदेव के रूप में अवतार लेने का उल्लेख भी हुआ है।<sup>४</sup> क्रष्णभदेव के साथ वृषभ तथा शिव के साथ नन्दी समान रूप से जुड़ा है। इसी प्रकार क्रष्णभदेव का निर्वाण स्थल कैलाश पर्वत माना

१ हीरालाल जैन, 'भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान', पृ. ११ आदिपुराण, प्रस्तावना, पृ. १३-१४।

२ पउमचरिय १.१ २८, ४०; ४.४।

३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति २.३०।

४ शिवपुराण ४.४७, ४८।

गया है और शिव भी कैलाशवासी माने जाते हैं।<sup>५</sup> महाभारत के अनुशासन पर्व में जहाँ एक ओर शिव का ऋषभ नाम आया है,<sup>६</sup> वहीं दूसरी ओर आदिपुराण में वृषभदेव को शुभ, शिव, मृत्युंजय, महेश्वर, शंकर, त्रिपुरारि तथा त्रिलोचन आदि नामों से संबोधित किया गया है।<sup>७</sup> शिव के मस्तक पर जटामुकुट और ऋषभनाथ के साथ कंधों पर लटकती जटाओं और यक्ष के रूप में गाय के मुखवाले गोमुख यक्ष की परिकल्पना भी दोनों की एकात्मकता का संकेत देते हैं। गोमुख यक्ष का वाहन वृषभ है और उसके एक हाथ में परशु दिखाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महायोगी शिव के स्वरूप के आधार पर ही जैन परम्परा के आदि तीर्थकर ऋषभदेव की कल्पना की गयी। भागवत्पुराण में वर्णित ऋषभ का सन्दर्भ ऋग्वेद के केशी और वातरशना मुनि के स्वरूप से साम्यता रखता है।<sup>८</sup> ऋग्वेद<sup>९</sup> की एक क्रचा में केशी और वृषभ का एक साथ उल्लेख आया है। ऋग्वेद में उल्लिखित वातरशना मुनियों के नायक केशी मुनि का ऋषभदेव के साथ एकीकरण हो जाने से जैन धर्म की प्राचीनता पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।<sup>१०</sup> इस आधार पर जैन धर्म की संभवित प्राचीनता ई. पू. १५०० तक मानी जा सकती है।<sup>११</sup> श्रीमद्भागवत्<sup>१२</sup> में भी ऋषभदेव का उल्लेख आया है जिसके अनुसार वासुदेव ऋषभरूप में नाभि और मरुदेवी के यहाँ अवतरित हुए। जैनेतर पुराणों-मार्कण्डेय पुराण,<sup>१३</sup> कूर्मपुराण,<sup>१४</sup> अग्निपुराण,<sup>१५</sup> वायुमहापुराण<sup>१६</sup>, ब्रह्माण्डपुराण<sup>१७</sup>, वाराहपुराण<sup>१८</sup>, लिंगपुराण<sup>१९</sup>, विष्णुपुराण<sup>२०</sup> तथा स्कन्दपुराण<sup>२१</sup>, में ऋषभदेव के अनेक उल्लेख हैं जो शिव से सन्दर्भित हैं।

ऋषभ का जन्म इन्द्र द्वारा रचित अयोध्या नगरी के राजा व चौदह कुलकरों में अन्तिम कुलकर नाभिराज के यहाँ हुआ था।<sup>२२</sup> श्वेताम्बर परम्परा में इनका जन्म चैत्र-शुक्ल अष्टमी के दिन माना गया है।<sup>२३</sup> श्वेताम्बर परम्परा में ऋषभ के नामकरण के सम्बन्ध में उल्लेख है कि मरुदेवी द्वारा स्वप्न में वृषभ को देखने तथा बालक के उर्खस्थल पर वृषभ का शुभलांघन होने के कारण ही उनका नाम ऋषभदेव रखा

५ वही, पृ. ६।

६ ऋषभ त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः।

७ आदिपुराण २५.१००-२१७।

८ हीरालाल जैन, पू. नि., पृ. १५।

९ कर्कदेव वृषभीयुक्तआसीद्, अवावचीत् सारथिरस्य केशी, (ऋग्वेद १०. १०२, ६)।

१० हीरालाल जैन, पू. नि., पृ. १७।

११ वही।

१२ श्रीमद् भागवत १-३.१३ (हस्तीमल, पृ. ५४)।

१३ मार्कण्डेयपुराण, अध्याय ५०.३९-४०, पृ. ५८-५९।

१४ कूर्मपुराण, अध्याय ४१. ३७-३८।

१५ अग्निपुराण, अध्याय १०. १०-११।

१६ वायुमहापुराण पूर्वार्ध, अध्याय ३३. ५०-५१।

१७ ब्रह्माण्डपुराण पूर्वार्ध, अनष्टङ्गपाद, अध्याय १४.५९-६०।

१८ वाराहपुराण, अध्याय ७४।

१९ लिंगपुराण, अध्याय ४७. १९-२२।

२० विष्णुपुराण, द्वितीयांश, अध्याय १. २७-२८।

२१ स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड के कौमारखण्ड, अध्याय ३७. ५७।

२२ आदिपुराण १२. ३-६।

२३ स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड के कौमारखण्ड, अध्याय ३७.५७।

गया।<sup>२४</sup> दिग्म्बर परम्परा में स्वप्न सन्दर्भ के साथ ही यह भी उल्लेख है कि इन्द्र ने इनका नाम वृषभदेव रखा था।<sup>२५</sup>

ऐसा उल्लेख है कि ऋषभ का कोई वंश नहीं था क्योंकि जिस समय उनका जन्म हुआ उस समय मानव समाज किसी कुल, जाति या वंश में विभक्त नहीं था।<sup>२६</sup> जब ये लगभग एक वर्ष के थे और एक दिन पिता की गोद में बैठे थे उसी समय हाथ में इक्षुदण्ड लिए इन्द्र वहाँ उपस्थित हुए। उसे प्राप्त करने के लिये ऋषभ ने दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। इन्द्र ने इक्षु-भक्षण की ऋषभ की रुचि जानकर उनके वंश का नाम इक्ष्वाकुवंश रखा।<sup>२७</sup> ज्ञातव्य है कि इक्ष्वाकुवंश में ही अधिकांश तीर्थकरों का जन्म हुआ था।

यौवनावस्था में यशस्वती तथा सुनन्दा नामक दो रूपवती व गुणवती राजकन्याओं के साथ ऋषभ का विवाह हुआ।<sup>२८</sup> वृषभ के पूर्व तत्कालीन समाज में कोई वैवाहिक प्रथा प्रचलित नहीं थी।<sup>२९</sup> सर्वप्रथम ऋषभ ने ही भावी मानव समाज के हितार्थ विवाह परम्परा का सूत्रपात किया और मानव मन में बढ़ती हुई वासना को विवाह सम्बन्ध के माध्यम से सीमित और नियोजित कर दिया।<sup>३०</sup> ऋषभदेव की यशस्वती नामक महादेवी से प्रथम चक्रवर्ती भरत सहित अन्य ९९ पुत्र एवं ब्राह्मी नाम की पुत्री तथा दूसरी रानी सुनन्दा से बाहुबली नामक पुत्र तथा सुन्दरी नाम की पुत्री उत्पन्न हुईं।<sup>३१</sup>

जैन मान्यता के अनुसार ऋषभ ने ही सर्वप्रथम कर्मयुग का आरम्भ किया था। इनकी राज्य व्यवस्था से पूर्व मानव कल्पवृक्ष के फल व अपने आप उत्पन्न कन्द-मूल आदि के भोजन पर ही निर्भर था। ऋषभदेव ने सर्वप्रथम असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य तथा शिल्प इन छह कार्यों के द्वारा प्रजा को आजीविका का उपदेश दिया।<sup>३२</sup> शस्त्र धारण कर सेवा करना असिकर्म, लिखकर आजीविका करना मसिकर्म, जमीन को जोतना-बोना कृषिकर्म, पढ़ा कर अथवा नृत्य-गायन द्वारा आजीविका करना विद्याकर्म, व्यापार करना वाणिज्यकर्म तथा हस्त की कुशलता से जीविकोपार्जन शिल्पकर्म कहलता है।<sup>३३</sup> शिल्पकर्म द्वारा आजीविका का सन्दर्भ जैन परम्परा में प्रारम्भ से ही कला के महत्व को स्पष्ट करता है। कर्मयुग का आरम्भ करने के कारण ऋषभ ‘कृतयुग’ तथा ‘प्रजापति’ कहलाये हैं।<sup>३४</sup> कर्मभूमि के समान ऋषभ वर्णव्यवस्था के भी जनक थे।<sup>३५</sup>

ऋषभ के संसार के प्रति विरक्ति एवं दीक्षा ग्रहण करने के सम्बन्धों में उल्लेख मिलता है कि एक दिन जब वे सभामण्डप में सिंहासन पर बिराजमान थे उसी समय इन्द्र ने उनके मन को राज्य व सांसारिक भोगों से विरत करने के उद्देश्य से नीलांजना नाम की एक क्षीण-आयु नृत्यांगना को ऋषभ के समक्ष उपस्थित किया जो नृत्य करते समय ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी।<sup>३६</sup> इस घटना से ऋषभ को

- २४ आवश्यकचूर्णि (जिनदासकृत), पृ. १५१।
- २५ आदिपुराण १४.१६०-१६१; हरिवंशपुराण ८.२०४-२११।
- २६ हस्तीमल, पू. नि. पृ. १५।
- २७ आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १८६; निर्युक्ति दीपिकागाथा १८१।
- २८ आदिपुराण १५.५०-७०।
- २९ हस्तीमल, पू. लि., पृ. १६।
- ३० आवश्यकनिर्युक्तिगाथा, १९१, पृ. १९३।
- ३१ आदिपुराण १६. ४-७; आदिपुराण १६-१३१-१४६, १७९-१८०
- ३२ हरिवंशपुराण ९. २५-३१।
- ३३ आदिपुराण १६. १८१-१८२।
- ३४ आदिपुराण १६. १८३-१९०।
- ३५ आदिपुराण १६. १८३; हरिवंशपुराण ९.२५-३१।
- ३६ आदिपुराण १७. १-९।

समस्त भोगों से विरक्ति हो गयी।<sup>३७</sup> इस अवसर पर लोकान्तिक देवों के आगमन तथा इन्द्र द्वारा ऋषभ के दीक्षा अथवा तपः कल्याणक करने का उल्लेख मिलता है।<sup>३८</sup> ऋषभ अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को साम्राज्य पद तथा बाहुबली को युवराज पद पर अधिष्ठित कर स्वयं इन्द्र द्वारा उठाये गये पालकी में बैठ सिद्धार्थक नामक वन में गये और वहाँ वस्त्र, माला व अन्य आभूषणों का त्याग कर, पंचमुष्टियों से केश-लुंचन कर दिग्म्बर रूप धारण कर दीक्षा ग्रहण की।<sup>३९</sup> इन्द्र ऋषभ के केश क्षीरसागर में प्रवाहित कर तथा अनेक प्रकार से उनकी स्तुति कर स्वर्ग चले गये। ऋषभ के साथ चार हजार अन्य राजा भी दीक्षित हुए थे। उल्लेखनीय है कि श्वेताम्बर परम्परा में ऋषभ के चार मुष्टि केश-लुंचन का उल्लेख मिलता है। इन्द्र की प्रार्थना पर ऋषभ ने एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने दिया था। उपर्युक्त परम्परा के कारण ही कृष्णाणकाल से सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में ऋषभनाथ के साथ कन्धों पर लटकती हुई जटाएँ दिखाई गयीं। कल्पसूत्र एवं विषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में स्पष्ट उल्लेख है कि ऋषभ के अतिरिक्त अन्य सभी जिनों ने दीक्षा के पूर्व अपने मस्तक के सम्पूर्ण केशों का पाँच मुष्टियों में लुंचन किया था।<sup>४०</sup> यद्यपि दिग्म्बर परम्परा में ऋषभ के पंचमुष्टि केश में लुंचन का उल्लेख हुआ है किन्तु मूर्त उदाहरणों में एलोरा, देवगढ़, खजूराहो तथा अन्य सभी दिग्म्बर स्थलों पर श्वेताम्बर उदाहरणों के समान ही ऋषभ के कन्धों पर लटकती हुई जटाएँ दिखायी गयीं।<sup>४१</sup>

दीक्षा धारण करने के पश्चात् ऋषभ छह माह तक उपवास का व्रत लेकर तपोयोग में अधिष्ठित हो गये।<sup>४२</sup> विषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में केवल सात दिनों के महोपवास व्रत का उल्लेख है।<sup>४३</sup> छह माह के महोपवास व्रत के बाद भी उनका शरीर पहले की तरह ही देवीप्यमान बना रहा तथा केश संस्कार रहित होने के कारण जटाओं के समान हो गये थे।<sup>४४</sup>

अनेक वर्षों तक विभिन्न देशों में विहार करने के बाद ऋषभ पुरिमताल नामक नगर में पहुंचे और वहाँ शक्ट नामक उद्यान में एक वट वृक्ष के नीचे चित्त की एकाग्रता तथा विभिन्न मोहनीय कर्मों पर विजय प्राप्त कर फाल्युन कृष्णा एकादशी के दिन उत्तराशाढा नक्षत्र में उन्होंने केवलज्ञान की प्राप्ति की।<sup>४५</sup> तत्पश्चात् ऋषभ विभिन्न देवों द्वारा निर्मित समवसरण के तीसरे पीठ पर स्थित सिंहासन पर विराजमान हुए और कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् पहला उपदेश दिया।<sup>४६</sup>

समवसरण में विभिन्न तत्वों का निरूपण करने के बाद ऋषभ गणधरों के साथ अनेक वर्षों तक काशी, अवन्ति, कुरु, कौशल, सुद्धा, पुण्ड चेदि, मालव, दशार्णव विदर्भ आदि देशों में विहार करते रहे और आयु की समाप्ति के चौदह दिन पूर्व पौष मास की पूर्णिमासी के दिन कैलाश पर्वत पर विराजमान हुए।<sup>४७</sup> यहाँ पर माघकृष्ण चतुर्दशी के दिन अभिजित नक्षत्र में अनेक मुनियों के साथ उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।<sup>४८</sup>

३७ आदिपुराण १७. १०-२८।

३८ आदिपुराण १७. ४६-४७, ७२-७४।

३९ आदिपुराण १७.७६-७७, ९४, १८२-१९०,१९४-२०१। केशलोच करते समय इन्द्र के कहने पर वृषभदेव ने कुछ केश छोड़ दिये थे जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

४० कल्पसूत्र १९५; विषष्टिशलाकापुरुषचरित्र ३.६०-७०।

४१ मारुतिनन्दन तिवारी, एलिमेन्ट्स ऑफ जैन आइकनोग्राफी, पृ. २४, ३२।

४२ आदिपुराण १८. १-२।

४३ विषष्टिशलाकापुरुषचरित्र १.६, ४५९-४९३।

४४ आदिपुराण १८. १-२।

४५ आदिपुराण २०. २१८-२६८।

४६ आदिपुराण २३. ७५।

४७ आदिपुराण २५. २८७; ४७. ३२२-३२३।

४८ आदिपुराण ४७. ३३८-३४२।



## ॥ क्रष्णभद्रेव : एक परिशीलन ॥

विगत : अष्टापद और क्रष्णभद्रेव संबन्धी माहिती

देवेन्द्र मुनि शास्त्री

नित्यानुभुतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः  
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः  
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-  
माख्यान्नमो भगवते क्रष्णभाय तस्मै ॥

- श्रीमद्भागवत ५।६।१९।५६९

### प्रथम खण्ड

#### भारतीय साहित्य में क्रष्णभद्रेव

- ◆ जैन साहित्य में क्रष्णभद्रेव
- ◆ वैदिक साहित्य में क्रष्णभद्रेव
- ◆ इतर साहित्य में क्रष्णभद्रेव
  - \* बौद्ध साहित्य में क्रष्णभद्रेव
  - \* इतिहास और पुरातत्त्व के आलोक में
  - \* पाश्चात्य विद्वानों की खोज